हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

भाग (३)

भक्ति काण्ड

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग, इलाहाबाद

हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

तीसरा भाग

अनुवादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग
इलाहाबाद—२११००६
●
दूर-भाष : ५१४८३

पहला संस्करण
मकर-संक्रान्ति, २०४७ वि०
१४ जनवरी, १९९१
मूल्य [redacted] रु०

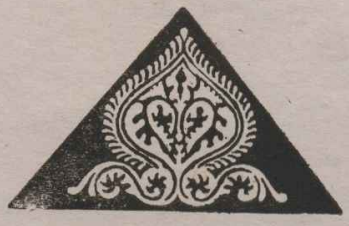

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग
इलाहाबाद—२११००६

अ-नु-क्र-म

१ पहला परिच्छेद : श्री गणेश का पूजा-विधान १-१३

[१ प्रातः-कृत्य, २ तर्पण-विधि, ३ भूत-शुद्धि, ४ मातृका-न्यास, ५ गणेश-ध्यान, ६ श्री गणेश का पूजा-यन्त्र और पीठ-पूजादि, ७ पुरश्चरण, ८ काम्य कर्मों के प्रयोग, ९ गज-सम्पादन, १० महा-लक्ष्मी आदि की साधना, ११ गणेश का यन्त्र-राज और उसका फल, १२ आकर्षणादि प्रयोग-विधि, १३ गणेश-गायत्री, १४ गणेश-मन्त्र का ऋष्यादि, बीजोद्धार, ध्यान और पूजादि, १५ श्रीगणेश की मुद्राएँ, १६ श्री-गणेश-मन्त्र के प्रयोग और उनके फल, १७ अणिमादि-मन्त्रों से पूजन, १८ हरिद्रा गणेश, १९ महा-गण-पत्युपनिषत्, २० गणपति-स्तोत्रम्]

२ दूसरा परिच्छेद : शिव-पूजा-प्रकरणम् १४-२२

[१ वाण-लिङ्गादि का प्रकरण, २ वाण - लिङ्ग के पूजन का फल, ३ अशुभ लिङ्ग, ४ शुभ लिङ्ग, ५ वाण-लिङ्ग की उत्पत्ति आदि, ६ वाण-लिङ्ग में आवाहनादि, ७ वाण-लिङ्ग का स्मरण और फल, ८ वाण-लिङ्ग-स्तोत्रम्, ९ रौद्र-लिङ्ग-लक्षण, १० शिव - नाभि - लक्षण, ११ दैव - लिङ्ग - लक्षण, १२ आर्ष लिङ्ग-लक्षण, १३ लिङ्ग के लक्षण, १४ स्वयम्भू लिङ्ग के लक्षण, १५ लिङ्ग बनाने के द्रव्यादि, १६ शिव-लिङ्ग का संस्कार, १७ शक्ति-सहित शिव-लिङ्ग-पूजा का फल, १८ पार्थिवादि लिङ्ग का परि-णाम, १९ 'लिङ्ग' शब्द की व्युत्पत्ति, २० लिङ्ग की महिमा, २१ पारद शिव-लिङ्ग की महिमा, २२ पारद लिङ्ग बनाने की विधि, २३ शिव-लिङ्ग की उत्पत्ति, २४ शिव - पूजा के अधिकारी, २५ शिव - पूजा न करने से दोष, २६ शिव-लिङ्ग की स्थापना, २७ शिव-लिङ्ग की त्रि - काल पूजा, २८ कामना - भेद से पार्थिव-लिङ्ग की संख्या]

३ तीसरा परिच्छेद : पार्थिव-शिव-पूजा की विधि २३-३२

[१ शिव-पूजा, २ शिव के षडक्षर-मन्त्र का उद्धार, ३ अष्टाष्ट-मूर्त्ति की पूजा, ४ शिव-पूजा का सूत्र, ५ शिव की पूजा किए बिना शक्ति-पूजादि करने में दोष, ६ शिव-पूजा के उपयुक्त पुष्पादि और उनकी महिमा, ७ शिव-लिङ्ग की काम्य-पूजा, ८ शिव को अर्पित द्रव्यों का फल, ९ शिव - निर्माल्य के खाने में दोष, १० वाण - लिङ्ग के निर्माल्य की ग्राह्यता, ११ शान्ति - कर्मादि में शिव - पूजा का फल, १२ शिव-स्तोत्र, १३ शिव-कवच, १४ विल्व-वृक्षादि की महिमा, १५ विल्व-वृक्ष के नीचे वेदी की महिमा, १६ पञ्च-वटी की महिमा, १७ विल्व-पत्र की महिमा, १८ रुद्राक्ष की महिमा, १९ सम्विदा का प्रकरण, २० समया - स्तोत्र, २१ विजया-भक्षण का फल, २२ सम्विदा-भक्षण का काल और मात्रा]

४ चौथा परिच्छेद : शाल-ग्राम का प्रकरण ३३-३७

[१ शाल-ग्राम की उत्पत्ति, २ शाल-ग्राम शिला के शुभाशुभ लक्षण, ३ शाल-ग्राम पूजा का फल, ४ शाल-ग्राम से युक्त प्रदेश की महिमा, ५ सुदर्शन आदि चक्रों के लक्षण, ६ शाल-ग्राम की उत्पत्ति का स्थान, ७ शाल-ग्राम शिला के समीप मृत्यु का फल, ८ शाल-ग्राम-क्षेत्र में स्नान - दानादि का फल, ९ शाल-ग्राम के दान का फल और मत्स्यादि-मूर्त्तियाँ, १० शाल-ग्राम के भेद, ११ दो शाल-ग्रामों आदि

के पूजन का निषेध, १२ बारह शाल-ग्रामों की पूजा का फल, १३ शाल-ग्राम बेचने की निन्दा, १४ तुलसी-दल द्वारा शाल-ग्राम-पूजा का फल, १५ शाल-ग्राम और द्वारका-चक्र के एकत्र रहने का फल]

५ पाँचवाँ परिच्छेद : विष्णु-पूजादि का कथन ३८-४७

[१ द्वारिका-शिला के भेद व लक्षण, २ शाल-ग्राम की पूजा-विधि, ३ विष्णु की पूजा - विधि, ४ विष्णु-पूजोपचार-मन्त्र, ५ अक्षय धन-प्राप्ति का प्रयोग, ६ विष्णु के नामों का माहात्म्य, ७ श्रीकृष्ण-शतनाम-स्तोत्रम्, ८ काष्ठ-पात्र में विष्णु की पूजा का निषेध, ९ स्वर्णादि - पात्रों में विष्णु की पूजा का फल, १० पुरुष-सूक्त की महिमा, ११ द्रव्य-विशेष द्वारा विष्णु को स्नान कराने का फल, १२ उबटन का फल, १३ शरीर धोने का फल, १४ मुख धोने का फल, १५ महा-स्नान का फल, १६ शङ्ख - महिमा और उसके लक्षण, १७ त्रिपदी का लक्षण, १८ तुलसी की महिमा, १९ तुलसी लगाने की विधि, २० तुलसी-माला के धारण करने की विधि, २१ माला पहनने की आवश्यकता, २२ वैष्णव- प्रशंसा, २३ दशावतारों के आविर्भाव का समय]

६ छठा परिच्छेद : महा-विद्यादि का कथन ४८-६४

[१ महा-विद्या का निरूपण, २ महा-विद्याओं की महिमा, ३ महा - विद्यादि के भैरवों का निरूपण, ४ महा-रात्रि आदि का निरूपण, ५ विद्या की उत्पत्ति और काली का माहात्म्य, ६ तारा का माहात्म्य, ७ षोडशी का माहात्म्य, ८ विद्युद् - गौरी की उत्पत्ति, ९ अर्द्ध - नारीश्वर आदि की उत्पत्ति, १० छिन्न-मस्ता आदि की उत्पत्ति, ११ उच्छिष्ट-चाण्डालिनी की उत्पत्ति, १२ धूमावती की उत्पत्ति, १३ बगला की उत्पत्ति, १४ मातङ्गी की उत्पत्ति, १५ भुवनेश्वरी, महा - लक्ष्मी आदि की उत्पत्ति, १६ महा - काल की उत्पत्ति, १७ वटुकादि की उत्पत्ति, १८ काली का प्रकरण, १९ आद्या की प्रशंसा, २० काली - निन्दा में दोष, २१ काली का मन्त्र और उसका फल, २२ दक्षिणा - काली का कल्प, २३ तान्त्रिक पूजा के अधिकारी, गुरु द्वारा पूजा और उसका फल, २४ अन्य द्वारा तान्त्रिक पूजा कराने में दोष, २५ पुरोहित द्वारा तान्त्रिक पूजादि में दोष, २६ पूजा , काल में अन्य - मुख देखने में दोष, २७ आद्या की पूजा, २८ महा-काल का ध्यान और खड्गादि-पूजा, २९ संक्षिप्त-पूजा और नित्य - पूजा, ३० पुरश्चरण की विधि, ३१ काली-शतनाम-स्तोत्र, ३२ महा - विद्या - स्तोत्र, ३३ महा - विद्या - कवच, ३४ श्मशान-कालिका-कवच, ३५ शाक्त-प्रशंसा]

७ सातवाँ परिच्छेद : कुमारी-पूंजा की विधि और उसका फल ६५-७२

[१ कुमारी का निरूपण, २ कुमारी-पूजा का फल, ३ कुमारी - पूजा की विधि, ४ कुमारी-स्तोत्र, ५ कुमारी-मन्त्र का पुरश्चरण, ६ कुमारी - पूजा का प्रयोग, ७ कुमारी - तर्पण, ८ कुमारी - कवच, ९ ब्राह्मण-प्रशंसा]

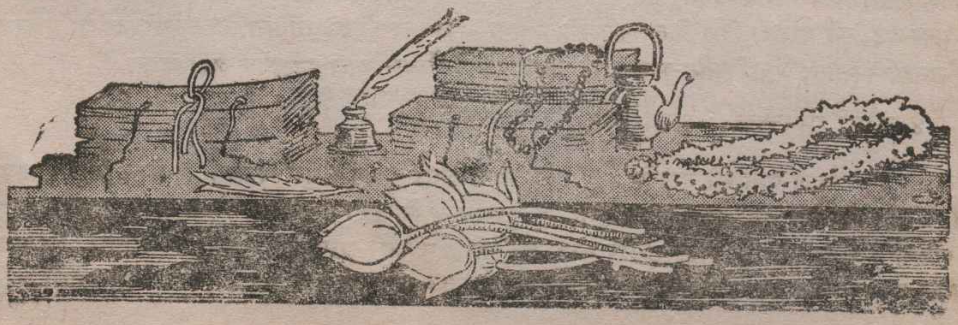

श्रीगणेशाय नमः

हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

भक्ति-काण्ड : पहला परिच्छेद

श्रीगणेश का पूजा-विधान

प्रातः-कृत्य—'कुल-मूलावतार-कल्पसूत्र-टीका' में उद्धृत 'गणेश-विमर्षिणी' के अनुसार—

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर शिरस्थ श्वेत-पङ्कज पर सुख-पूर्वक बैठे हुए गौर-वर्ण, द्वि-नेत्र, शान्त-मुख वाले अपने गुरुदेव का ध्यान करे, जो वर और अभय मुद्रा हाथों में धारण किए हैं। उन्हें प्रणाम कर बाहर निकले और शौच, आचमन, दातून, मुख-प्रक्षालन आदि आवश्यक कर्म कर स्नान करे।

हृत् और अंकुश मन्त्रों द्वारा आवाहन कर सूर्य-मण्डल से तीर्थों को लाकर जल में संयुक्त करे। फिर जल में सोम-सूर्याग्नि-मण्डल का ध्यान कर उसके मध्य में तीन बार मूल-मन्त्र का स्मरण करते हुए डुबकी लगाए। तब आचमन कर षडङ्ग-न्यास करे और कलश-मुद्रा से सात बार मन्त्राभिमन्त्रित जल से अपना अभिषेक कर पुनः आचमन करे।

इस प्रकार स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण करे। पुनः आचमन कर पूर्व-वत् षडङ्ग-न्यास करे। फिर बाँएँ हाथ में जल लेकर उससे नीचे गिरते हुए जल-विन्दुओं से सात बार मूल-मन्त्र का जप करते हुए प्रोक्षण करे और बचे जल को दांएँ हाथ में लेकर अभिमन्त्रित कर खड़े होकर सूर्य की ओर गायत्री मन्त्र से तीन बार अर्घ्याञ्जलि प्रदान करे।

तर्पण-विधि—सर्वाभीष्ट-दायक चतुरावृत्ति-तर्पण की विधिः एकान्त निर्जन अरण्य में, जहाँ कोई उपद्रव न हो, स्नानादि किए हुए साधक पूर्व-वत् न्यास कर सरोवर के मध्य में खिली हुई कमलिनियों के वन का ध्यान करे। उस वन के मध्य में एक विशाल कमल का चिन्तन करे, जो तरुण सूर्य के समान तेजस्वी, समुन्नत, सुगन्धित, सुन्दर, मनोहर, तुरन्त का खिला हुआ हो।

अथवा यथा-शक्ति सुवर्ण का एक चौड़े मुखवाला बड़ा सा कलश या नवीन मिट्टी का कलश भद्रासन पर स्थापित कर उसे नदी, नद या सरोवर के शुद्ध जल से भरे। उसी के मध्य में उक्त कमल का ध्यान करे।

तब आत्मा को गणनायक-स्वरूप ध्यान करते हुए उन्हें ऊपर चाँदी की सीढ़ियों से पहुँचाकर उस कमल के मध्य में बैठावे और गन्ध-पुष्पों से उनका पूजन करे। फिर साध्य की नासिका के अग्र-भाग पर अमृत-धारा छोड़कर उसके शरीर का ध्यान कर गणपति के मस्तक पर श्वेत चन्दन, केसर और कस्तूरी से युक्त जल द्वारा पहले मूल-मन्त्र द्वारा चार बार तर्पण करे। मिथुन, षड्-गणेश, शङ्ख-निधि और पद्म-निधि का तर्पण उनके बीजों को आदि में लगाकर और अन्त में 'स्वाहा' जोड़कर चार-चार बार तर्पण कर पुनः मूल-मन्त्र से चार बार तर्पण करे। १०८ बार का यह तर्पण 'कनिष्ठ-क्रम' कहा गया है।

अथवा आठ बार मूल-मन्त्र द्वारा तर्पण कर 'श्रीं' आदि युग्मों का तर्पण उनके पूर्व मूल-मन्त्र जोड़कर चार-चार बार तर्पण करे। यह २१६ बार का तर्पण 'मध्य-क्रम' माना गया है।

अथवा मूल-मन्त्र द्वारा बीस बार तर्पण कर मन्त्राक्षर आदि में और 'स्वाहा' अन्त में जोड़कर मिथुनों का तर्पण कर पुनः मूल-मन्त्र द्वारा पूर्व-वत् चार बार तर्पण करे। यह तर्पण ४४४ बार होता है और 'ज्येष्ठ-क्रम' कहलाता है।

इस प्रकार सुधा-मय जल से शरीर का अभिषेक कर गन्धादि द्वारा पुनः देवता को सन्तुष्ट कर सर्वाभीष्ट हेतु प्रार्थना कर विसर्जन करे। प्रति-दिन प्रातःकाल जो इस प्रकार तर्पण करता है, वह एक वर्ष के भीतर सभी अभीष्टों को बिना किसी विघ्न के प्राप्त कर लेता है, यह निश्चित है।

शारदा-तिलक, तेरहवें पटल में भी लिखा है—शुद्ध-जल से गण-नायक दिनेश का तर्पण ४४४ बार करे, तो एक वर्ष के पूर्व ही अभीष्ट से भी अधिक फल की प्राप्ति होती है। सभी मन्त्रों के तर्पण में विशेष बात यह है कि स्वर्ण-मय उदयाचल शिखर पर खेलती हुई चन्द्र-कला का ध्यान करे। और सुधा-सोपान से आए हुए गणेश का पूजन कर उनका तर्पण करे। तर्पण में मन्त्र का प्रयोग यह है—**'गं गणेशं तर्पयामि'**।

प्रत्येक तिथि में ४०० के क्रम से चार द्रव्यों द्वारा उतना ही होम करना चाहिए। अनावृष्टि में घोर भय में, राजा या चोर आदि के उपद्रव में, अग्नि-काण्ड में, विवाद में, महा-दरिद्रता के सङ्कट में, विवाहादि सभी शुभ कामों में उक्त प्रकार से तर्पण करने से श्री गणेश के प्रभाव से सभी कुछ सहज ही सिद्ध हो जाता है।

स्थिर-मन से साधक ईख के सागर की भावना करे। उसके मध्य में तरुण सूर्य के समान मूंगे के द्वीप का ध्यान करे। द्वीप के मध्य में जामुन के दिव्य नद से युक्त स्थल की भावना करे। उसके ऊपर कल्पकोद्यान में विशाल मणि-मय भू-तल का ध्यान करे। उस भू-तल के मध्य में मणि-जटित खम्भों वाले दिव्य मण्डप की भावना करे, जो गहरे सिन्दूरी रंग से लिपा हुआ बड़ा मनोहर है; मोतियों और मणियों तथा पुष्प-मालाओं से सजा हुआ है। घण्टा, ध्वज, पताकाओं से वह बड़ा सुन्दर लगता है। उस मण्डप के मध्य में महा-कल्प-वृक्ष का ध्यान करे, जिसकी पूजा देवों के समूह कर रहे हैं; वसन्त आदि छहों ऋतुएँ जिसकी सदा सेवा करती हैं और जिसके फल, फूल, पत्ते आदि मणि, रत्न, प्रवाल जैसे शोभायमान हैं। उस दिव्य वृक्ष के मूल-भाग में नव-रत्नों से जटित महा-सिंहासन की भावना करे और उसके मध्य में षट्-कोण-कर्णिका से शोभायमान इस कमल-लिपि की भावना करे।

भूत-शुद्धि—लिङ्ग-मूल और गुदा के नीचे दाएँ पैर के टखने को रखकर शरीर को ग्रीवा और सिर के साथ सीधे स्थिर रखता हुआ इन्द्रियों और मन को संयमित करते हुए बैठे। अपनी गोद में हाथों को रखे और नेत्रों को नासिका के अग्र-भाग पर स्थिर करे। पैर के अँगूठे से लेकर मस्तक तक अपना सारा शरीर सुस्थिर रहे। शरीर के अन्दर और बाहर व्यापिनी शक्ति का ध्यान करता हुआ अहङ्कार-सहित मन, जीव और प्राणों को संयमित कर गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग द्वारा मूलाधार से कुण्डलिनी शक्ति को उठाये। फिर कुण्डलिनी के साथ आत्मा को जोड़कर 'हंस' बीज द्वारा कुम्भक के उद्घात से परानन्द का पूजन करे।

सुषुम्ना के मध्य मार्ग से जीवात्मा को उत्तमाङ्ग तक लाकर द्वादश-दल के अन्तर्गत नियोजित करे और उसमें तत्व-वर्णों के विलीन होने की भावना करे। तब नाभि में स-विन्दु धूम्र-वर्ण वह्नि-बीज का चिन्तन कर 'हंस'-बीज से प्रचण्ड वायु द्वारा शरीर को सुखा दे। हृदय-पद्म के षट्-कोण में उद्घात-पञ्चक से नरसिंह बीज को ज्वाला-माला से युक्त ध्यान कर उस बीज की ज्वाला से सूखे हुए शरीर के जल कर भस्मीभूत होने की भावना करे। फिर उस भस्म को वह्नि-बीज के द्वारा उठी हुई वायु से विकीर्ण कर

द्वादशार्ण चिदन्तर में संयत होकर शिव-शक्ति से समुद्भूत तत्वों से सृष्टि-मार्ग के द्वारा तेजोमय शरीर को उत्पन्न करे।

चिच्चन्द्र-बीज के मध्य में स्थित जल-बीज का ध्यान कर उससे उत्पन्न अमृत-सागर में महत् बुद्-बुद की भावना करे। उस बुद-बुद के मध्य में स्थित ब्रह्माण्ड का ध्यान कर उसमें विश्व की भावना करे। हृदय-कमल में देवी का ध्यान कर 'सोऽहं'-बुद्धि द्वारा चिदम्बर के आत्म-चैतन्य को ले आवे। भू-बीज से आत्मा के स्थिर होने की भावना करे। फिर देह को बाहर और भीतर से अमृत द्वारा प्लावित कर मन से यह भावना करे कि शक्ति अपने स्थान में आ गई है।

इस प्रकार भूत-शुद्धि कर पुनः न्यास करे।

मातृकान्यास—सभी मन्त्रों के जप के पूर्व लिपि का न्यास किए बिना सभी कर्म निष्फल होते हैं। अतः पहले लिपि-न्यास करे। षण्ड (नपुंसक) वर्णों को छोड़ विसर्गादि द्वादश स्वरों से पुटित कादि छः वर्गों से षडङ्ग-न्यास करे। केशान्त, मुख-वृत्त, नेत्र-द्वय, श्रवण-द्वय, दोनों नासिका-गण्ड-ओष्ठ-दाँतों, मूर्द्धा और मुख में स्वरों का न्यास करे। पाँच वर्गों के वर्णों का न्यास क्रमशः बाहु, चरण की सन्धियों में, पार्श्व-द्वय में, पीठ, नाभि और हृदय में करे। यादि वर्णों का न्यास धातु और प्राणों में क्रमशः करे। इस प्रकार मातृका-न्यास कर मूल-मन्त्र द्वारा पञ्चधा न्यास करे।

मूर्द्धा, मुख, हृदय, गुह्य, पाद, हृदय में छः बीजों का क्रमशः न्यास कर शेष मन्त्र-वर्णों से सारे शरीर में व्यापक न्यास करे। शिर, ललाट, नेत्र, वक्त्र, चूड़ा, जिह्वा में क्रमशः छः बीजों का न्यास कर शेष वर्णों से पूर्व-वत् व्यापक न्यास करे। शिर, भ्रू-मध्य, श्रोत्र-द्वय, नेत्र-द्वय, नासा-द्वय, वक्त्र, दोनों हाथों और दोनों पैरों की चार-चार सन्धियों, कूर्पर और हृदय में न्यास कर पूर्व-वत् व्यापक न्यास करे। शिर, वक्त्र, हृदय, गुह्य और पैर इन पाँच स्थानों में मिथुनों का न्यास उनके बीजों और नामों सहित अलग-अलग करे। पाँच मिथुन कहे गए हैं, छठा कमलात्मक है।

अब मूल-षडङ्ग-न्यास छः बीजों से करे। अंगुष्ठ से कनिष्ठा तक 'उत्पत्ति (सृष्टि)' न्यास ब्रह्मचारी करें। मध्यमा से तर्जनी तक 'स्थिति-न्यास' गृहस्थ करें और अंगुष्ठ से कनिष्ठा तक 'संहार-न्यास' संन्यासी करें। आश्रम के अनुसार दोनों हाथों की अंगुलियों के अग्र-भागों में कर-तल और कर-पृष्ठ में न्यास कर हृदयादि-मुद्राओं से हृदय आदि स्थानों में न्यास करे।

मूर्द्धा, नेत्र-द्वय, जिह्वा, हृदय, नाभि, शिर, जानु-द्वय और चरणों के अग्र भाग में विनायक आदि विघ्नेशों का न्यास करे—१ विनायक, २ विरूपाक्ष, ३ क्रूर-कर्मा, ४ अपराजित, ५ चण्ड-वेग, ६ हय-ग्रीव, ७ कराल, ८ चण्ड-विक्रम। कण्ठ-सहित अंशों में उन्हीं का न्यास करे—१ विघ्न, २ विनायक, २ वीर, ३ शूर-वदन, ४ गज-वक्त्र, ५ एक-दन्त, ६ लम्बोदर, ७ क्षिप्र, ८ महा-गणप।

ब्रह्माणी आदि अष्ट-माताओं और असिताङ्ग आदि अष्ट-भैरवों का न्यास उनके बीजों सहित उनके स्थानों में करे। यथा—मस्तक, भुजा-द्वय, स्तन-द्वय, पार्श्व-द्वय, जठर, दक्ष-पार्श्व, दक्ष-कण्ठ, वाम कण्ठ, हृदय।

श्रीगणेश का ध्यान—उक्त प्रकार न्यास करने के बाद ध्यान करे। यथा—

सिद्धि - लक्ष्मी - समाश्लिष्ट - पार्श्वमर्द्धेन्दु - शेखरम्,
आरक्त - वर्णं मातु - लुङ्ग - गदा-पुण्ड्रेक्षु - कार्मुकम्।
शूलं सुदर्शनं शङ्खं नीलोत्पलं धान्य - मञ्जरीम्,
निज-दन्ता रत्न - घण्टा परिन्द्र - पाण्येकादशकम्॥

बगल में सिद्धि-लक्ष्मी से आलिङ्गित, मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्र धारण करनेवाले, रक्त-वर्ण गणेश जी अपने ग्यारह हाथों में १ मातुलुङ्ग, २ गदा, ३ लाल ईख का धनुष, ४ शूल, ५ सुदर्शन चक्र, ६ शङ्ख, ७ नील-कमल, ८ धान्य-मञ्जरी, ९ अपना दाँत, १० रत्न-जटित घण्टा, ११ पलाश-दण्ड लिए हैं।

मतान्तर से दस हाथवाले विघ्नेश्वर का ध्यान किया जाता है। संसार-व्यापी ध्यान निम्न प्रकार है—

क्षमा - पदं स्व - तनु - त्रये जठरं पवनाक्षरम्,
रवीन्द्र - वह्नि-नयनं दशाशा - श्रवण - द्वयम्।
प्रधान - शीर्षं भूतेशं बुद्धीन्द्रिय - विचेष्टितम्,
अनादि - निधनं दिव्यं तेजो-राशिमनामयम्॥

सच्चिदानन्द गणेश का ध्यान इस प्रकार करे कि पृथ्वी उनके पैर-स्वरूपा है, तीनों लोक उदर-स्वरूप हैं, वायु उनका शब्द-रूप है, सूर्य-चन्द्र-अग्नि उनके नेत्र-स्वरूप हैं, दसों दिशाएँ उनके कर्ण-स्वरूपा हैं, प्रधान-तत्व उनका सिर है, बुद्धि और इन्द्रियाँ उनकी क्रिया-स्वरूपा हैं—इस प्रकार के आदि, अन्त से रहित दिव्य, तेजस्वी, आनन्द-मय, सब प्राणियों के स्वामी गणेश जी हैं।

उनका साकार ध्यान साधक इस प्रकार करे कि पहले ईख के रस-सागर की भावना करे। उसके मध्य में विराजमान गज-मुख, त्रिनेत्र, एक-दन्त दश-भुज, शङ्ख के समान सुन्दर ग्रीवा वाले, लम्बोदर महा-गणेश का ध्यान करे। वे अपने दाहने पैर को लटकाकर कमल पर रखे हुए हैं। तरुण-सूर्य के समान उनकी आभा है, पीत-वस्त्र पहने हैं। सन्ध्या-कालीन लालिमा जैसे स्वर्णाभूषण धारण किए हैं। मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्र शोभित है और नाग-यज्ञोपवीत पहने हैं। रत्नों से युक्त हार उनके विशाल वक्ष को सुशोभित कर रहा है। मणियों और मोतियों से सजी हुई करधनी पहने हैं। किङ्किणी-माला से बँधी हुई बाँई जाँघ से बैठे हुए हैं। दाहिने नीचे के हाथ से क्रमशः १ गदा, २ शूल, ३ वर्त्ति, ४ कद्रु (सर्प), ५ दाँत और दाँएँ हाथों में १ शाल्यग्र-पाश, २ सुदर्शन चक्र, ३ बीजपूर, ४ इक्षु-चाप, ५ शूल लिए हैं। (अन्य मत से कमल, पाश, वज्र, व्रीहि और दाँत)। बाँएँ भाग में सुन्दर मञ्जीर से शोभाय-मान चरणोंवाली, सभी आभूषणों से सुशोभिता शक्ति कर-कमलों से आलिङ्गन किए विराजमाना है। सम्मुख रखे रत्न-कलश से भक्तों के लिए रत्नों की वर्षा करते रहते हैं और अपने कानों की ध्वनि से मद-लोलुप भ्रमरों को उड़ाते रहते हैं। देवासुर निरन्तर सेवा करते हैं और उच्च स्वर में स्तव-गीतों से वन्दना करते रहते हैं। ऐसे महा-गणेश देव का ध्यान करे।

श्रीगणेश का पूजा-यन्त्र और पीठ-पूजादि—थोड़े से जल में कस्तूरी, श्वेत चन्दन और कुंकुम मिलाकर उससे स्वर्ण-लेखनी या दूब के डण्ठल से समान रेखावाले सुन्दर कमल की रचना करे। उसे स्वर्ण-पीठ पर या उसके अभाव में कपास-वृक्ष को चौकोर पटिया पर स्थापित करे।

पहले अपने बांयें और दाँयें ओर क्रमशः गुरुदेव तथा गणेश्वर को हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा लेकर पीठ-पूजा प्रारम्भ करे—आधार-शक्ति, अनन्त, कूर्म-वत् पृथिवी की क्रमशः एक के ऊपर एक की पूजा कर मन्त्रों से सिंहासन की पूजा करे। उज्ज्वल आभूषण पहने गौर-वर्णा 'आधार-शक्ति' का ध्यान करे, जो लोकों को धारण करती है। ३२ तत्वों के अन्त में धरादि विद्याओं का योग यहाँ करना चाहिये। पीठाकार में 'अनन्त' के होने से 'अनन्तासन' कहते हैं। सिंहासन के चार पैर हैं—धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य (कल्पसूत्र-टीका)।

पीठ के आग्नेयादि पैरों में क्रमशः उक्त चारों हैं और पूर्वादि चार दिशाओं में अधर्मादि चार हैं। 'धर्म' रक्त वर्ण वृषाकार है। 'ज्ञान' गहरे नीले वर्ण का सिंहाकार है। 'वैराग्य' भूताकार और 'ऐश्वर्य' उज्ज्वल चन्द्रमा के समान है। इस प्रकार स्वर्ण के मणि-पीठ में धर्म आदि क्रमशः ईश्वर हैं। उस पीठ के कमल के ऊपर 'सत्व, रज' और 'तम' हैं। फिर शूलिका के आकार की 'माया' है। 'विद्या' आच्छादन-स्वरूपा है। एक के ऊपर एक की पूजा कर उनके मध्य में 'आनन्द'-मय 'लिपि-कमल' की पूजा करे। उसके ऊपर तीन मण्डलों की पूजा करे। दल में 'सूर्य-मण्डल' की, केशर में 'चन्द्र-मण्डल' की और तब कर्णिका में 'अग्नि-मण्डल' की पूजा करे। प्रणव और आदि वर्ण जोड़कर इनके नामों से पूजा करनी चाहिए। इन तीनों मण्डलों में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर की भावना करे। 'आत्मा' और 'अन्तरात्मा' की पूजा एक के ऊपर एक की करे।

केशरों के मध्य में पूर्वादि क्रम से हाथ में पाश और अंकुश लिए, नव-कुंकुम के समान रक्त-वर्णा, मणि-भूषणों से भूषिता नौ पीठ-शक्तियों का ध्यान करे—१ तीव्रा, २ ज्वालिनी, ३ नन्दा, ४ भोगदा, ५ काम-वर्धिनी, ६ उग्रा, ७ तेजोवती, ८ सत्या, ९ विघ्न-नाशिनी। **'सर्व-शक्ति-कमलासनाय नमः'** से गन्ध-पुष्पाक्षत द्वारा पूजन करे।

अब पूरक-प्राणायाम से मूल-मन्त्र को अपने मन से जोड़कर वहाँ स्थित जीव-चैतन्य को उठाकर हृदय-कमल में ले आवे। पूर्वोक्त विधि से गणेश का सर्वोपचारों से अर्चन कर प्रसन्न करे। फिर उन्हें तेजोरूप में भावित कर श्वास द्वारा नासा-मार्ग से अपने हाथ की पुष्पाञ्जलि में ले आवे और पूजा किए हुए पीठ-कमल पर उन्हें विराजमान कर मूल-मन्त्र-पूर्वक **'गणपति-मूर्तये नमः'** से प्रणाम करे। फिर **'मूलं गणेशं आवाहयामि'** से स-विधि आवाहन कर तत्व-वर्णों से न्यास करे। तब पूर्व-वत् ध्यान कर, पूजन करे।

इसके बाद पाँच मुद्रायें दिखाये—१ स्थापन, २ सन्निधान, ३ सन्निरोधन, ४ अवगुण्ठन, ५ अमृतीकरण। हृदयादि न्यास कर मूल-मन्त्र से व्यापक न्यास करे। गणेश की मुद्रायें दिखाकर गणेश्वर का ध्यान करते हुए पुष्पाञ्जलि देकर १ आसन, २ स्वागत, ३ अर्घ्य, ४ पाद्य, ५ आचमनीय, ६ मधुपर्क, ७ पुनः आचमन, ८ स्नान, ९ वस्त्र, १० आभूषण, ११ सुगन्धि, १२ पुष्प, १३ धूप, १४ दीप, १५ नैवेद्य, १६ वन्दना—इन सोलह उपचारों से पूजन करे। अथवा 'पाद्य' से 'नैवेद्य' तक दस या 'गन्ध' से 'नैवेद्य' तक पाँच उपचारों से पूजा करे।

पूजा तीन प्रकार की कही गई है, उनमें से कोई एक पूजा करे। 'अर्घ्य' के आठ द्रव्य हैं—१ गन्ध, २ पुष्प, ३ अक्षत, ४ यव, ५ कुशाग्र, ६ तिल, ७ सरसों, ८ दूर्वा। 'पाद्य' के द्रव्य हैं—१ श्यामाक, २ दूर्वा, ३ कमल, ४ विष्णुक्रान्ता। 'आचमनीय' के द्रव्य हैं—१ जातो, २ लवङ्ग, ३ कक्कोल। 'मधुपर्क' शहद, घी और दही से बनता है। शुद्ध जल से 'पुनः आचमनीय' होता है। गन्धाष्टक है—१ चन्दन, २ अगुरु, ३ कपूर, ४ केसर, ५ कुंकुम, ६ रोचना, ७ जटामांसी, ८ गोरोचन। 'गन्ध' बनता है चन्दन, अगुरु, कपूर को मिलाने से।

गणेश के प्रिय 'पुष्प' आगम में ये बताये हैं—करवीर, उत्पल-द्वय, विजया-पुष्प, पुन्नाग, नाग, चम्पा, कुन्द, मन्दार, बन्धु-जीव, जपा, श्रीरमा, बिम्ब, कुरण्टक, पाटल, अशोक, मदन, जाति, कुब्ज, अपराजिता, नन्द्यावर्त। मुकुलित, म्लान, जीर्ण, कीड़े लगे हुए, चोट खाए हुए, शरीर पर चढ़े हुए और बासी पुष्प ग्राह्य नहीं हैं।

उत्तम गुग्गुल, उशीर, सिता, आज्य, मधु, चन्दन आदि को अङ्गार पर छोड़कर नीचे से 'धूप' देनी चाहिए। 'दीप' ऊपर से दिखाना चाहिए, उसकी बत्ती गो-घृत या तिल-तैल से भीगी हो और कपूर से युक्त हो। 'नैवेद्य' में केला, मधु, घृत, दुग्ध आदि निवेदन करे।

देवता को 'स्नान' की सूचना देकर 'नमः' कहे और केश-प्रसाधन, उबटन, गर्म जल आदि निवेदन करे। **'महा-गणपते ! पाद्यं नमः'**—से पैरों में पाद्य दे। उसी प्रकार **'स्वधा'** कहकर तीन बार मुख में आचमनीय दे। **'अर्घ्यं स्वाहा'** से शिर पर अर्घ्य दे और **'स्वधा'** से मधुपर्क देकर पुनः आचमन करावे। सिर पर पुष्प देकर पञ्चगव्य, गन्ध, उबटन, सुगन्धित आमलकी-गन्ध देकर तीर्थोदक दे। दिव्य गन्ध का अनुलेपन देकर सुगन्धित तीर्थ-जल से अभिषेक करे। दर्पण दिखाकर दिव्य वस्त्र देकर मुकुट की कल्पना करे।

देवता को सम्बोधन कर उसके मुख की कल्पना करते हुए 'कल्पयामि' कहे। सङ्कल्प कर पूर्व-वत् पाद्यादि तीन उपचार प्रदान करे। गन्धाक्षत, पुष्प, धूप द्वारा मुद्रा-सहित हृदय से कवच तक की क्रमशः पूजा करे। मन्त्राक्षर-संख्या के अनुसार जप कर पुनः अङ्ग-पूजा कर बाह्य आवरणों की पूजा करे। फिर चतुरस्र-स्थित लोक-पालों की पूजा करे। पुरुहूत अर्थात् इन्द्र (पूर्व) और ईश (ईशान कोण) के मध्य में और रक्ष (नैऋत कोण) तथा वरुण (पश्चिम) के मध्य में ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि और इन्द्रादि लोक-पालों का उनके चतुर्थ्यन्त नाम के आदि में 'स-वाहन, सपरिवार' एवं उनके बीज तथा अन्त में 'नमः' जोड़कर पूजन करे।

इस प्रकार कुन्दादि पुष्पों से आवरण-पूजन कर पुनः मूल-मन्त्र से विधिपूर्वक गन्धादि से इष्ट-देव की पूजा करे। फिर **'जय-ध्वनि, मन्त्र-मातः ! स्वाहा'** से घण्टा की पूजा कर उसे पाँच बार बजाये। 'वनस्पति०' इस मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगाकर निर्दिष्ट मुद्रा दिखाते हुए और 'सु-प्रकाश०' इस मन्त्र के अन्त में 'नमः' लगाकर उसकी मुद्रा दिखाते हुए क्रमश धूप एवं दीप निवेदन करे। फिर गणेश-मन्त्र को पूर्व में लगाकर **'सर्वानमृतीकृत्य नैवेद्यं गृहाण स्वाहा'** कहकर मुद्रा दिखाते हुए नैवेद्य प्रदान करे। मुद्रा दिखाकर और जल देकर सभी वस्तुएँ देनी चाहिए। स-परिवार देवता के तृप्त होने की भावना करे।

पुरश्चरण—नित्य-विधि का पालन करते हुए पुरश्चरण करे। गुरु से दीक्षा लेकर पुरश्चर्या-सिद्धि हेतु चार लाख चवालीस सहस्र मन्त्र-जप करे। जप करते समय शिर स्थिर रहे, कण्ठ-ओष्ठ-जिह्वा-दृष्टि नियन्त्रित रहें, नासा-तालु-गले और जिह्वा के रस-कणों को समुचित रूप से ग्रहण करते रहें; गरदन कुछ उठी रहे; दृष्टि कुछ संकुचित रहे। नासिका के अग्र-भाग में दृष्टि लगी रहे, दाँतों से दाँतों को स्पर्श न करे। देवता में चित्त और प्राण लगे रहें, उसी के ध्यान में निष्ठा और एकाग्रता बनाए रहे। इस प्रकार हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहते हुए वाचिक, उपांशु या मानस रूप से चार सहस्र चवालिस या एक सौ आठ बार जप करे।

जितनी संख्या से जप का आरम्भ करे, उसी के अनुसार प्रतिदिन जप करता हुआ पुरश्चरण करे। कम या अधिक करने से व्रत भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए समान संख्या में इस प्रकार जप करे कि निर्दिष्ट संख्या पूरी हो जाय। जप का दशांश तर्पण करे। जप के पूर्ण होने पर दशांश होम करे। पुरश्चरण की साङ्गता के लिए दशांश-संख्यक ब्राह्मणों को भोजन कराकर प्रसन्न करे। फिर यथा-शक्ति गुरु को दक्षिणा दे।

गुरु की कृपा प्राप्त कर साधक नित्य चार आवृत्ति या यथा-शक्ति जप करता हुआ यथा-विधि पूजा, होमादि करे। कंजूसी न करता हुआ विघ्नेश्वर की उपासना करने से एक वर्ष के पूर्व ही महती श्री (वैभव) की प्राप्ति होती है।

काम्य-कर्मों के प्रयोग—मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक काम्य-कर्मों की साधना करे। साधकों के लिए यहाँ संक्षेप में शास्त्रोक्त विधि से काम्य-कर्म बताए जाते हैं—

अपने हृदय-कमल में कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल प्रभावाले, शुक्लालङ्कारों से सुशोभित गणेश का जो निरन्तर ध्यान करता है, उसके मुख में शास्त्रों को व्याख्या करनेवाली सरस्वती विराजमान हो जाती हैं और नित्य ही सत्य को प्रकाशित कर उसे दिव्य ज्ञान देती हैं।

सिन्दूर के समान प्रभावाले गणेश को पाश और अंकुश धारण किए हुए जो ध्यान करता है, उसे सुन्दर स्त्रियाँ वरण करती हैं।

पाश, अंकुश, वर और अभय धारण करनेवाले गणेश को हिम, कुन्द और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल तथा माणिक्य से सुशोभित जो ध्यान करता है, उसके वश में सुन्दर स्त्रियाँ हो जाती हैं।

विवाद के अवसरों पर प्रतिवादी के मुख में जलती हुई अग्नि की प्रभा के समान गणेश का ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करने से उसका मुख स्तम्भित हो जाता है।

हृदय-कमल में अंगुष्ठ-बराबर गणेश को शुद्ध-स्फटिक को आभावाला ध्यान करते हुए उन्हें चिदाकाश के अमृत रस से सदा अभिषिक्त करे, तो सब प्रकार के रोगों से छूटकर साधक चिर-काल तक जीवित रहता है।

शुक्ल-वर्ण गणेश को दश-बाहु, श्वेत-वस्त्र-धारी, सौम्य और चिच्चन्द्र के अमृत से प्लावित अपने हृदय-कमल में नित्य निर्मल मन से ध्यान करने से साधक गरुड़ के समान तीनों प्रकार के विष का प्रभाव दूर करने में समर्थ होता है।

स्वर्ण की इच्छावाला नित्य शहद से और वशीकरण की इच्छावाला खीर से हवन करे। लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए शक्कर से, दीर्घायु और अर्थ-सम्पत्ति के लिए दही से हवन करें। अन्न-सम्पत्ति के लिए अन्न से और द्रव्य-प्राप्ति के लिए तिल-तण्डुल से हवन करे। अनावृष्टि के लिए नमक से और वर्षा के लिए वेत से हवन करे। सौभाग्य के लिए लाजा (लावा) और कुसुम्भ से हवन करे। राज-वशीकरण के लिए पद्मों से और राज-पत्नी के वशीकरण के लिए कैरव से होम करे। अश्वत्थ, उडुम्बर, प्लक्ष, न्यग्रोध की समिधा में हवन करने से विप्र, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तुरन्त वशीभूत होते हैं।

स्त्रियों की प्रतिमा पिष्ट से बनाकर प्रतिदिन घृत से आहुति देने से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। मन्त्र-राज का जप कर उसका दशांश राई-नमक से हवन करे, उस हवन की भस्म को बाँएँ हाथ में लेकर उससे स्त्री की प्रतिमा का ताड़न करे, तो वह स्त्री वशीभूत होती है। उसी प्रकार पीत-पुष्पों से उसकी पूजा करने से शत्रु की सेना का उसके वाहनों और सैनिकों सहित स्तम्भन होता है। इस मन्त्र के प्रभाव से प्रतिवादी गूँगा हो जाता है और पञ्च दिव्य भी स्तम्भित हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

विभीतक की समिधा से नियमित रूप से हवन करने से शत्रुओं का उनके स्थान से उच्चाटन होता है, इसमें सन्देह नहीं। गाँव में, युद्ध में या नगर में गणेश की स्तुति कर हवन करने से मेरु-मन्दर जैसे पर्वत का उच्चाटन होता है, मनुष्य की तो बात ही क्या!

निम्ब-पत्र में शत्रु का नाम प्रयत्न करके लिखे। बैल, घोड़े, भैंसे के रक्त को निम्ब-तैल में मिलाकर एकान्त में बीस सहस्र होम करे, तो विद्वेषण होता है। मनुष्य की अस्थि से आठ अंगुल की

कील बनाकर मृत-केशों से लपेटे और एक सहस्र आठ बार अभिमन्त्रित कर कुलिकोदय-काल में शत्रु के द्वार पर भूमि में गाड़ दे, तो एक सप्ताह के भीतर उसकी मृत्यु होती है, उसमें सन्देह नहीं।

किसी गुप्त, निर्जन स्थान को गोबर से लोपे। स्नान कर एक नया कुम्भ लावे और उसे शुद्ध जल से भरे। साथ ही एक नये शराव को कपिला गाय के घी से भरकर उस कुम्भ पर रखकर दीप जलावे। १०८ बार मन्त्र का जप करने से कुमार या कुमारी में आवेश आयेगा और वह भूत, वर्तमान, भविष्य की सभी शुभ और अशुभ बातें बताएगा, इसमें सन्देह नहीं।

निशा-काल में गणेश का विधिवत् ध्यान कर जप करे, तो शुभ-अशुभ कर्मों को वे निश्चय ही बताते हैं। विवाह की इच्छा रखनेवाला यदि पवित्र होकर गणेश के मन्त्र-राज का दस सहस्र जप कर उसका दशांश रक्त हयमार पुष्पों से हवन करे, तो उसे अभीष्ट कन्या की प्राप्ति होती है।

गज-सम्पादन—राजाओं के लिए यह अनुष्ठान है। किसी वन में विशाल वट-वृक्ष के निकट सुन्दर मण्डप के अन्तर्गत वेदिका के उत्तर ओर चौकोर सुन्दर कुण्ड बनवाये। वेदिका के ऊपर गणेश का आवाहन कर उन्हें पके हुए फल, पके हुए अन्न और जल अर्पित करे। फिर उनकी अनुमति लेकर अग्नि स्थापित कर त्रि-मधु-मिश्रित अष्ट-द्रव्यों से चालीस सहस्र, चार सौ चालीस हवन करे। पृथक् द्रव्य से यथा-संख्यक हवन पाँच दिन करे। श्रेष्ठ ब्राह्मणों से मन्त्र-जप कराये। ऐसा करने से गणेश्वर की कृपा से चालीस दिन के भीतर स्वर्णाभावाले गज उस महा-वट के समीप आ जाते हैं।

अनुष्ठान-काल में ब्राह्मणों को नित्य स्वादिष्ट भोजन कराये। उन ब्राह्मणों के आशीर्वाद से राजा की अभिवृद्धि होती है। उसे गुरु को पचास गज या उनके मूल्य के बराबर धन दक्षिणा में देना चाहिए या उसका दशांश प्रदान करे। मिथुनादि से लेकर दिगीशों तक के मन्त्रों द्वारा घृत से स्नान कराकर देवता की पूजा कर होम समाप्त करे। फिर पुष्पाञ्जलि देकर अपने हृदय में गणेश का विसर्जन करे। होम की समस्त सामग्री को गुरु को प्रदान कर शुद्ध चित्त से राजा उन्हें बारम्बार प्रणाम करे और अन्य आभूषणों एवं रेशमी वस्त्रों से गुरु को सन्तुष्ट करे, जिससे गज-सम्पत्ति की वृद्धि हो।

महा-लक्ष्मी आदि की साधना—मनोहर, निर्जन स्थान में, जो सब प्रकार के विघ्नों से रहित हो, श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्प-माला व श्वेत चन्दन धारण कर नित्य-कर्म समाप्त कर पूर्व-वत् अग्नि की स्थापना कर त्रि-मधु (मधु, घृत, दुग्ध) से युक्त कमलों, पुण्डरीकों और श्रीफलों से एकाग्र-चित्त हो शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के प्रातःकाल पञ्च-पञ्चधा हवन करे। इससे महती अक्षया लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।

उक्त प्रतिपदा से प्रारम्भ कर मातृका-न्यास कर चतुर्थी के दिन श्रीगणेश की महा-पूजा करे। त्रि-मधु से युक्त पूर्वोक्त द्रव्यों से शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा में एक लाख आठ आहुतियाँ जब तक पूरी न हों, तब तक प्रसन्न-मन से हवन करे। होम के पूर्ण होने पर निश्चय ही अपनी लक्ष्मी दिखाई पड़ती है।

आदित्य की ओर मुख करके खड़े होकर भुजाओं को ऊपर उठाए हुए एक लाख जप करने से साधक महा-धन को प्राप्त करता है।

दूध और घृत से युक्त दूर्वा से प्रति-दिन अथवा अपने जन्म-दिन पर प्रात.-काल हवन करे, तो साधक नीरोग होकर दीर्घायु को प्राप्त करता है।

ब्राह्म-मुहूर्त्त में पूर्णिमा के दिन कपिला गाय के गोबर को पद्म-पत्र में लेकर उसे सहस्र मन्त्र-जप से अभिमन्त्रित कर पृथ्वी में गाड़ दे। इससे भूत, चोर, सर्प आदि का भय नहीं रहता। महा-गणेश

के लिए प्रतिदिन हवन करने से अञ्जन-सिद्धि, खड्ग-सिद्धि, पादुका-सिद्धि आदि साधक के लिए दुर्लभ नहीं रह जातीं।

गणेश का यन्त्र-राज और उसका फल——सम-तल शुद्ध भूमि को गन्धादि से परिष्कृत करे। काम-क्रोध से रहित होकर पूर्व-वत् न्यास-पूर्वक शङ्कर-पुत्र देव-देवेश गणेश को पूजा करे। तब भूर्ज-पत्र पर यन्त्र-राज का उद्धार करे। कस्तूरी, रोचना, चन्द्र (कपूर), काश्मीर (कस्तूरी), चन्दन, रस (सिन्दूर), गोबर का रस और गज-मद को समान भाग में मिलाकर उससे स्वर्ण-लेखनी या जातो-काष्ठ या दूर्वा द्वारा षट्-त्रिंशत् कोण, अष्टार और द्वादशार की रचना कर उनमें क-वर्गादि एवं गायत्री के वर्णों को लिखे। इनके बाहर विस्तृत भू-गृह बनाकर उसे अष्ट-गजों से विभूषित करे। उसके बाहर वारुण कूर्म-मण्डल बनाये कर्णिका में प्रणव-वेष्टित 'ह' और 'क्ष' को अङ्कित करे। षट्-कोणों में अङ्गों को और दलों में लक्ष्मी-मन्त्र को लिखे। द्वादशार में शक्ति-मन्त्र लिखकर षोडश-दलों में नपुंसक-स्वरों को छोड़कर स्वरों को लिखे। अष्ट-दलों में 'क' से 'म' तक के अक्षर लिखे। इन सबको पूर्वादि-क्रम से लिखना चाहिए। पार्श्व-कोणों में समार्ण को लिखे।

श्रीगणेश का यह यन्त्र-राज प्रख्यात है। इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिए। सभी प्रकार के विघ्नों की शान्ति के लिए भगवान् शिव ने इसे बताया है। प्राण-प्रतिष्ठा कर त्रि-लौह में इसे वेष्टित कर जो इस पूजित जपित यन्त्र को धारण करता है, उसके विघ्न, रोगादि सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। शासक और सभी प्राणी उसके दर्शन मात्र से उसके वशीभूत होते हैं। उसकी वाणी संस्कृत, प्राकृत आदि से सुशोभित होती है। स्वयं महा-लक्ष्मी की उस पर कृपा हो जाती है। इस मन्त्र के प्रभाव का वर्णन करना सम्भव नहीं है। इस मन्त्र से पृथ्वी पर कुछ भी असाध्य नहीं रहता।

आकर्षणादि प्रयोग-विधि——'आकर्षण' के लिए लाल द्रव्य से यन्त्र बनाकर उसमें अनामा अँगुली के रक्त से साध्य का नाम लिखे। फिर रक्त चन्दन से भुक्त लाल पुष्पों से पूजा कर शहद को प्रतिकृति के कुक्षि-भाग पर यन्त्र को रखे और कपिला गौ-घृत के दीपक से चारों कोनों को तब तक तप्त करे, जब तक दीपक बुझ न जाय। इसी प्रकार तीन दिन करे। १०८ बार मन्त्र का जप करता रहे। इस प्रकार तापित यन्त्र को धारण करे, तो साध्य व्यक्ति जीवन भर दास-वत् रहता है।

'स्तम्भन' हेतु शिला-पट्ट पर पीले द्रव्य से यन्त्र को लिख और मदार के पत्तों पर उसे स्थापित कर पीले पुष्पों से उसकी पूजा करे। फिर पीत वस्त्र में वेष्टित कर धारण करे, तो सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों, भूत-प्रेतों, ग्रहों, चोरों आदि का स्तम्भन होता है।

'उच्चाटन' के लिए श्मशान के अङ्गार से युक्त चिता-वस्त्र पर कौवे के पङ्ख से यन्त्र को लिख-कर उसमें साध्य का नाम लिखे। फिर उसे एक-लिङ्ग के ध्वज पर स्थापित करे तो निश्चय ही उच्चाटन होता है और लोगों में 'विद्वेषण' भी होता है।

'मारण' हेतु मनुष्य की अस्थि-शलाका से श्मशान के कपट पर विष-वृक्ष के चिताङ्गार से क्रोधपूर्वक यन्त्र में साध्य-नाम लिखकर श्मशान - भूमि में गाड़ने से एक सप्ताह में शत्रु की मृत्यु होती है।

गणेश-गायत्री—**एक-दंष्ट्राय विद्महे वक्र-तुण्डाय धीमहि तन्नो विघ्नः प्रचोदयात्।**

गणेश-मन्त्र का ऋष्यादि, बीजोद्धार, ध्यान और पूजादि—**गणकः स्याद् ऋषिश्छन्दो नीवृद्, विघ्नोऽस्य देवता, गकारो बीजं, विन्दुः शक्तिः।**

अर्थात् गणेश मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द नीवृद्, देवता विघ्नेश्वर, बीज गकार और शक्ति विन्दु है।

शारदा-तिलक, त्रयोदश-पटल में बीजोद्धार—पञ्चान्तकं शशि-धरं बीजं गणपतेर्विदुः।

पञ्चान्तक—ग, शशि—विन्दु (÷), उससे युक्त = 'गं'। अथवा शशि = विसर्ग (:), उससे युक्त = 'गः'। राघव भट्ट के अनुसार दोनों ही ठीक हैं। कुछ औकार-युक्त बताते हैं। 'प्रयोग-सार' में लिखा है कि 'क' से तृतीय अर्थात् 'ग' को विन्दु और औकार से युक्त करे अर्थात् **'गौं'**। इस बीज को छः दीर्घ स्वरों से युक्त कर षडङ्ग-न्यास करना चाहिये अर्थात् **'गां, गीं, गूं, गैं, गौं, गः'** से। ध्यान निम्न प्रकार करे—

सिन्दूराभं त्रि-नेत्रं पृथुतर-जठरं हस्त-पद्मैर्दधानं। दन्तं पाशांकुशेष्टान्युरु-कर-विलसद्-वीजपूराभिरामं।
अर्द्धेन्दु-द्योत-मौलिं करि-वर-वदनं वीज-पूरार्द्र-गण्डं। भोगीन्द्राबद्ध-भूषं भजत गण-पतिं रक्त-वस्त्राङ्ग-रागं।

श्री गणेश का दूसरा ध्यान सभी कामनाओं का सिद्धि-दायक बताया है। यथा—

नव-जीमूत-सङ्काशं भिन्नाञ्जन-सम-प्रभं। अष्टादश-भुजं देवं मेरु-मन्दिर-सन्निभं।
भीम-मुखं विरूपाक्षं मेघ-घोष-सम-ध्वनिं। रक्ताम्बर-परीधानं नाग-यज्ञोपवीतिनं।
नाना-रत्न-समुद्दीप्तं कोटीराभरणोज्ज्वलं। शक्तिं च परशुं शक्त्या धृत - तोमर-तर्जनं।
दन्त-पद्म-गतं पाशमंकुशं चेक्षु - कार्मुकं। स्व-पुष्प-वाण-शाल्यग्रं पात्रं मोदक - पूरितं।
कुण्डिकामक्ष-मालां च साभयं वरदं शुभैः। स्व-पुष्करेण कलशं दधानं द्विरदाननं।
पद्मासनस्थं देवेशं सर्व - देवैर्नमस्कृतं। गणेशं सञ्चिन्तयेऽहं सर्वोपद्रव - शान्तये॥

सभी प्रकार के उपद्रवों की शान्ति के लिए ध्यान करना चाहिए। वशीकरण और आकर्षण में रक्त-वर्ण, स्तम्भन में पीत-वर्ण, विद्वेषण और उच्चाटन में धूम-वर्ण, मारण में कृष्ण-वर्ण, धन-प्राप्ति के लिए स्वर्ण-वर्ण तथा विद्या-प्राप्ति हेतु श्वेत-वर्ण गणेश का ध्यान करना चाहिए।

श्रीगणेश की मुद्रायें—ध्यान के बाद जो मुद्रायें दिखाई जाती हैं, उनके सम्बन्ध में राघव भट्ट ने बताया है कि मुख से हाथ को लटका कर अँगुलियों को सिकोड़े। मध्यमा और तर्जनी के मध्य में अँगूठा रहे या मध्यमा नीचे रहे। यह श्रीगणेश की **'सर्व-सिद्धिदा मुद्रा'** है। मध्यमा को अधोमुखी कर फैलाने से **'विघ्न-मुद्रा'** बनती है। अथवा—हाथ के अग्रभाग को सिकोड़े और उस हाथ के मूल भाग में नाक को लगाए, तो सर्व-सिद्धि-दायिनी **'गणेश्वरी मुद्रा'** बनती है। यह मुद्रा गणपति के सभी मन्त्रों में काम आती है।

श्रीगणेश-मन्त्र के प्रयोग और उनके फल—मन्त्र का चार लाख जप करे। तब दशांश होम करे। १ मोदक, २ पृथुक, ३ लावा, ४ सत्तू, ५ ईख, ६ नारियल, ७ तिल, ८ केला—ये आठ द्रव्य श्री गणेश-पूजन में विहित हैं। राघव भट्ट के अनुसार इनमें से एक-एक द्रव्य के द्वारा हवन करना चाहिए। कुछ के मत से आठों द्रव्यों को मिलाकर उससे हवन करना उचित है। भद्राचार्य का कथन है—

सर्वत्र मधुर-युक्त ही होम-द्रव्य निर्दिष्ट है। 'गणेश-विमर्षिणी' में लिखा है कि त्रि-मधु-युक्त अष्ट-द्रव्यों से हवन करे। इसका आशय यह है कि प्रत्येक द्रव्य का छान-बीन, धोकर शुद्ध कर शोधित करे। फिर त्रि-मधु मिलाकर हव्य का उपयोग करे।

'शारदा-तिलक' में लिखा है कि '१ तीव्रा, २ ज्वालिनी, ३ नन्दा, ४ भोगदा, ५ काम-रूपिणी, ६ उग्रा, ७ तेजोवती, ८ सत्या ९ विघ्न-नाशिनी'—इन नौ शक्तियों से युक्त पीठ पर विघ्नेश्वर को पूजा करे। राघव-भट्ट ने इनका ध्यान निम्न प्रकार बताया है—

पाशांकुशाञ्जलि-कर नव-कुंकुम - सन्निभाः । तोव्राद्याः पूजनीयाः स्युः शक्तयो मणि-भूषणाः ।

'शारदा-तिलक में—'सर्वादि-शक्ति-कमलासनाय नमः'—इस मन्त्र से आसन देकर मूल-मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर उसमें विघ्नेश की पूजा करे। कर्णिका में चारों दिशाओं में पहले इनका पूजन करे। तब केशरों में क्रमशः अङ्ग-देवताओं की पूजा करे। दलों के मध्य में '१ वक्र-तुण्ड, २ एक-दंष्ट्र, ३ महा-देव, ४ गजानन, ५ लम्बोदर, ६ विकट, ७ विघ्नराज, ८ धूम्र-वर्ण' की पूजा कर दलों के अग्र-भाग में 'ब्राह्मी' आदि की पूजा करे। तब लोक-पालों और उनके अस्त्रों का पूजन करे।

मन्त्र का पुरश्चरण हो जाने पर प्रयोग करे। चतुर्थी तिथि में नारियल से होम करना श्री-प्रद है। शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ कर चतुर्थी तक नारियल, सत्तू, लावा और तिल से क्रमशः चार सौ हवन करने से सभी प्राणी वशीभूत होते हैं।

'प्रयोग-सार' और 'नारायणीय' में—साध्य को पाशांकुश से आकृष्ट कर वश्य की आकांक्षा से जप करे, तो रुष्ट व्यक्ति का रोष समाप्त हो जाता है। तिल-युक्त चावलों से होम लक्ष्मी और वश्य-दायक है। इस प्रसङ्ग में भी शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ कर चतुर्थी तक चार सौ होम करना चाहिए। त्रि-मधु-युक्त लावे से होम करे, तो कन्या मिलती है। इस प्रयोग में प्रतिपदा से सप्तमी तक चार सौ होम करे। राघव भट्ट के अनुसार मधुर-त्रय-युक्त लावों से सात दिनों तक होम करने से कन्या को अभीष्ट वर प्राप्त होता है।

घृत-युक्त हवि से होम करे, तो अभीष्ट की सिद्धि होती है। दही से युक्त लावों द्वारा प्रतिपदा से चतुर्थी तक चार दिन होम करे, तो प्रीति उत्पन्न होकर वशीकरण होता है।

श्वेतार्क की जड़, लाल चन्दन, नीम की लकड़ी या हाथी-दाँत की मूर्ति में विघ्नेश्वर की पूजा कर चन्द्र-ग्रहण में निराहारी साधक उस मूर्ति को शिखा पर धारण कर उसे स्पर्श किए हुए स्पर्श-काल से मोक्ष तक मन्त्र का जप करे, तो युद्ध में और व्यवहार आदि में सर्वत्र विजय तथा श्री प्राप्त होती है।

रोचना और गज-मद को मिश्रित कर उसे इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। फिर उसका तिलक लगाए, तो सभी प्राणी वशीभूत होते हैं।

साध्य के नाम को मन्त्र से सम्पुटित कर मक्खन में लिखे। फिर उस मक्खन में गणेश की पूजा कर उसे स्पर्श कर प्राण-मन्त्र का जप करे। पुनः १०८ बार मूल-मन्त्र का जप कर उसे खा जाय। इस प्रकार रात्रि में सात दिनों तक करे। इससे शीघ्र ही साध्य वशीभूत होता है, इसमें सन्देह नहीं।

अणिमादि-मन्त्रों से पूजन—गायत्री तन्त्र, प्रथम ब्राह्मण पटल में—सोलह उपचारों से श्रीगणेश का पूजन कर अणिमादि-महा-मन्त्रों से श्री शिव-पुत्र की पूजा करे। ध्यान कर, पाद्यादिक दे और अणिमादि मन्त्रों का जप करे। ध्यान निम्न प्रकार करे—

सिन्दूर-वर्ण-सङ्काशं योग-पट्ट-समन्वितं । लम्बोदरं महा-कायं मुखं करि-करोपमं ।
अणिमादि-गुणैर्युक्तं अष्ट-बाहुं त्रिलोचनं । विजया-विधृतं लिङ्गं मोक्ष-कामाय पूजयेत् ।

'ॐ गं गणपतये स्वाहा' —इस मन्त्र से गण-नायक की पूजा करे।

अणिमादि आठ मन्त्रों से आठों भुजाओं की पूजा करे—

ॐ ह्रं अणिमायै नमः स्वाहा । प्रं प्राप्त्यै नमः स्वाहा । मं महिमायै नमः स्वाहा । ईं ईशितायै नमः स्वाहा । वं वशितायै नमः स्वाहा । कं कामावसायितायै नमः स्वाहा ।

इस प्रकार विधि-वत् पूजा कर विविध मिठाइयों, घृताक्त अन्न के लड्डुओं, दही, दूध और फलों से भोजन करा कर सुगन्धित पुष्प और सुगन्धित इत्रादि प्रदान करे। श्रीगणेश के वाहन मूषिक की विविध मिठाइयों व फलों से पूजा करे।

'ॐ मं मूषिकाय गणाधिप-वाहनाय धर्म-राजाय स्वाहा'—इस मन्त्र से मूषिका की पूजा सदा करे।

हरिद्रा गणेश—'नारद-पञ्चरात्र', दसवें अध्याय में नारद ने पूछा कि लिपि-लम्बोदर का जन्म मुझे आपने बताया, अब गण-नाथ के अन्य स्वरूपों के उद्भव को बताइए। ब्रह्मा जी ने कहा कि एक बार पार्वती देवी ने हल्दी को पीसकर उसका पुतला बनाया और शङ्कर से कहा कि इस पुत्र का पालन करिए। इस पर शङ्करजी ने उस पुत्र को विकसित कर दिया और उससे कहा कि तुम तपस्या करो, तब सिद्धि प्राप्त करोगे। पिता की बात सुनकर वह कामाख्या के काम-रूप पर्वत पर पहुँचा और वहाँ नियम-पूर्वक शुद्धता से पञ्चाक्षरी उग्र-तारा की आराधना की, जिससे शीघ्र ही देवी उसके सामने प्रत्यक्ष हो गईं। तब गिरिजा-पति शिव ने प्रेम-पूर्वक उस पुत्र से कहा कि 'तुम साधकों के लिए चतुर्वर्ग-दायक हो, इसमें सन्देह नहीं। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, परमेश्वरी और सभी देवता चतुर्वर्ग का फल देते हैं, उसी प्रकार हे देवेश! तुम भी चतुर्वर्ग के फल-दायक हो।'

सभी आगमों में वही 'हरिद्रा-गण-नाथ' नाम से प्रसिद्ध हैं। लिपि-लम्बोदर और हेरम्ब—इन सबका स्वरूप बाल्यावस्था का माना गया है। उच्छिष्ट-गण-नाथ का स्वरूप शास्त्र में द्रष्ट है।

महा-गण-पत्युपनिषत्—

ॐ लं स्वाहा नाववतु स्वाहा। नौ भुनक्तु स्वाहा वीरियं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। ॐ त्वं नमस्ते गण - पतये त्वमेव प्रत्यक्षं त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्त्ताऽसि, त्वमेव केवलं धर्त्ताऽसि, त्वमेव केवलं हर्त्ताऽसि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

त्वं साक्षादात्माऽसि। नित्यं ऋतं वच्मि, सत्यं वच्मि, अव त्वं मामव वक्तारं, अव श्रोतारं, अव दातारं, अव धातारं, अवानूचानमव शिष्यं, अव पश्चात्तात्, अव पुरस्तात्, अवोत्तरात्तात्, अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्, अवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि, पाहि समन्तात्। त्वं वाङ्-मयस्त्वं चिन्मयस्त्वं ब्रह्म, त्वं ब्रह्म-मयस्त्वमानन्द-मयस्त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि।

त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वं ज्ञान-मयो विज्ञान-मयोऽसि। सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयिष्यति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्-पाणि-पायु-पादानि। त्वं गुण-त्रयातीतः। त्वं देह-त्रयातीतः। त्वं काल-त्रयातीतः।

त्वं मूलाधार-स्थितो नित्यं, त्वं शक्ति - त्रयात्मिकस्त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यं। त्वं ब्रह्मा, त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।

गणादीन् पूर्वमुच्चार्य वर्णादींस्तदनन्तरं। अनुस्वारः पर-तरः अर्द्धेन्दु-लसितं तावद्रूप्यं। एतत् तव मनु-स्वरूपं। गकारः पूर्व-रूपं। अकारो मध्यम-रूपं। अनुस्वारश्चान्त्य - रूपं। विन्दूत्तर-रूपं। नादः सन्धानं। संहिता सन्धिः। स ईशान गणेश-विद्या। गणक-ऋषिर्निचृद्-गायत्रीच्छन्दः। गं गण-पतये नमः। ॐ एक-दन्ताय विद्महे वक्र-तुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।

एक-दन्तं चतुर्हस्तं पाशमंकुश - धारिणं। अभयं वरदं हस्तैर्विभ्राणं मूषक-ध्वजं। रक्तं लम्बोदरं सूर्प-कर्णकं रक्त-वाससं। रक्त-गन्धानु-लिप्ताङ्गं रक्त-पुष्पैः सु - पूजितं। भक्तानुकम्पिनं देवं जगत् - कारण-

मच्युतं । आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परं । एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः ।

'ॐ वराह-पतये नमो गण-पतये नमः प्रमथ-पतये नमस्तेऽस्तु लम्बो-दराय । एक-दन्ताय विघ्न-नाशिने शिव-सुताय वरद-मूर्तये नमः ।' एतदेवाथ सर्वेशि ! यो योऽधीते स ब्रह्म-भूयाय कल्पते । स पञ्च-महा-पातात् प्रमुच्यते । स सर्वतः सुखमेधते । सायमधीयानो दिवस - कृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रि-कृतं पापं नाशयति । तत्-सायं प्रातरधीयानः पापोऽपापो भवति । सर्वत्राधीयमानोऽप-विघ्नो भवति । धर्मार्थ-काम-मोक्षं च विन्दति ।

इत्यथर्व-शीर्षं अशिष्याय न देयं । यो यदि मोहाय दास्यति स पापी-यान् भवति । सहस्रावर्त्तनाद् यस्य यं यं काममधीते तं तमवाप्नोति । अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाङ्-मयो भवति । चतुर्थ्यामनश्नन् जपति स विद्या-वान् भवति । इत्याथर्वण-वाक्यं ब्रह्माद्याचरन् विद्या न विभेति कदा-चनेति । यो दूर्वाकुरैर्य-जति स वैश्रवणोपमो भवति । यो लाजैर्यजति स यशोवान् भवति । स मेधा-वान् भवति । यो मोदक-सह-स्रेण यजति स वांछितमवाप्नोति । यश्चाज्य - समिद्भिर्यजति स सर्वं लभते । अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयित्वा सूर्य वर्चस्वो भवति । महा-पापात् प्रमुच्यते स सर्व-विद् भवति । य एनं वेद इत्युपनिषत्स्वाह नाववतु । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।। इति महा-गणपत्युपनिषत् ।।

गणपति-स्तोत्रम्—

नारद-पञ्चरात्रे, प्रथम-रात्रे, सप्तमाध्याये, श्रीनारद उवाच—

हे गणेश, सुर-श्रेष्ठ, लम्बोदर, परात्पर ! हेरम्ब, मङ्गलारम्भ, गज-वक्त्र, त्रिलोचन !
त्रिलोचन-सुत, श्रोद, श्रीधर - स्मरणेप्सित ! परमानन्द, परम - पार्वती-नन्दन ! स्वयं ।
सर्वत्र पूज्य ! सर्वेण जगत्-पूज्य, जगद्-गुरो ! जगदीश, जगद्-बीज, जगन्नाथ ! नमोऽस्तु ते ।
यत् - पूजा सर्व-पुरतो यः स्तुतः सर्व-योगिभिः । यः पूजितः सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैस्तं नमाम्यहं ।
परमाराधनेनैव कृष्णस्य परमात्मनः । पुण्यकेन व्रतेनैव यं प्राप्य पार्वती सती ।
तं नमामि सुर-श्रेष्ठं सर्व-श्रेष्ठं गरिष्ठकं । जन-श्रेष्ठं वरिष्ठं च तं नमामि गणेश्वरं ।

फल-श्रुति—इदं लम्बोदर - स्तोत्रं नारदेन पुरा कृतं । पूजा-काले पठेन्नित्यं जयस्तस्य पदे पदे ।
सङ्कल्पतः पठेद् यो हि वर्षमेकं सु-संयतः । विशिष्ट - पुत्रं लभते परं कृष्ण - परायणं ।
यशस्विनं च विद्वांसं धनिनं चिर-जीविनं । विघ्न-नाशो भवेत् तस्य महैश्वर्यं यशोऽमलं ।
इहैव च सुखं भुक्त्वा अन्ते याति हरेः पदं ।
।। इति ज्ञानामृत-सारे गणेश-स्तोत्रं समाप्तम् ।।

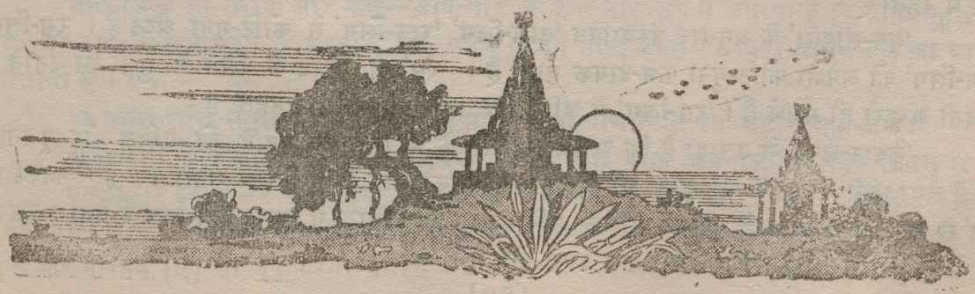

दूसरा परिच्छेद

शिव-पूजा-प्रकरणम्

बाण-लिङ्गादि का प्रकरण––'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'कालोत्तर' में––भुक्ति देनेवाले बाण-लिङ्ग की उत्पत्ति नर्मदा, गङ्गा, यमुना और पवित्र नदियों से होती है। इन्द्रादि से पूजित होने से इनके विविध प्रकार उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं। यथा––१ इन्द्र-लिङ्ग, २ आग्नेय लिङ्ग, ३ याम्य लिङ्ग, ४ नैर्ऋत लिङ्ग, ५ वारुण-लिङ्ग, ६ वायु-लिङ्ग, ७ कुवेर-लिङ्ग, ८ रौद्र-लिङ्ग, ९ वैष्णव-लिङ्ग। इनके लक्षण मूल ग्रन्थ के पृष्ठ २५-२६ पर द्रष्टव्य हैं।

शालग्राम आदि पर चन्द्रमा, कमल, स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि अङ्कित हों, तो उन्हें वैष्णव लिङ्ग मानते हैं। 'हेमाद्रि' में उद्धृत लक्षण-काण्ड में नारद ने ११ चिह्न बताए हैं। जिसका नाम सुनने से पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं और जो शहद के समान आभावाला तथा काली कुण्डलियों से युक्त रहता है, वह 'स्वयम्भू-लिङ्ग' सभी सिद्धों द्वारा पूजित होता है। अनेक वर्णोंवाला, जटा और शूल से अङ्कित 'मृत्युञ्जय लिङ्ग' होता है, जिसे देवता और राक्षस सभी नमस्कार करते हैं। बड़े आकार का, उज्ज्वल वर्णवाला, काले विन्दु से युक्त 'नील-कण्ठ लिङ्ग' होता है, जो सुर और असुर दोनों का पूज्य है। श्वेत केश, तीन नेत्रों से युक्त 'महा-देव लिङ्ग' सभी पापों का नाशक है। कृष्ण वर्ण, मोटा, जटा-जूटा से अङ्कित 'कालाग्नि-रुद्र लिङ्ग' होता है, जिसकी पूजा सभी प्राणी करते हैं। इसी प्रकार 'त्रिपुरारि', 'अर्द्ध-नारीश्वर', 'महा-काल' नामक लिङ्ग होते हैं, जिनके लक्षण मूल ग्रन्थ के पृष्ठ २७ पर द्रष्टव्य हैं। 'वीर-मित्रोदय' के अनुसार जिस लिङ्ग को नदी में फेंकने पर वह पुनः मिल जाय, उसे सुख-वर्द्धक 'बाण-लिंग' मानना चाहिए।

बाण-लिङ्ग के पूजन का फल––याज्ञवल्क्य संहिता के अनुसार नर्मदा नदी से प्राप्त जो लिंग पके हुए जामुन के फल की आकृतिवाला हो, वह पूजा के योग्य होता है। शहद के वर्णवाला, श्वेत, नीला या हरा और हंस-डिम्ब की आकृतिवाला लिंग स्थापना करने के लिए प्रशस्त है। वह पर्वत से नर्मदा के जल में स्वतः गिरता है। नर्मदा-तट पर प्राचीन काल में बाणासुर की प्रार्थना से महेश्वर ने लिंग-रूप ग्रहण किया था, इसी से 'बाण-लिंग' नाम पड़ा है। अन्य प्रकार के कोटि-लिंगों की पूजा से जो पुण्य होता है, वह केवल एक 'बाण-लिंग' की पूजा करने से मिल जाता है।

नर्मदा से प्राप्त लिंग को ताम्र, स्फटिक, स्वर्ण, रजत या पाषाण की वेदी पर स्थापित कर जो प्रति-दिन भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करता है, उसे सांसारिक सुखादि तो मिलते ही हैं, मोक्ष तक उसके हाथ में रहता है।

'सूत-संहिता' के अनुसार संस्थापित 'बाण-लिंग' 'रत्न-लिंग' से कोटि-गुना श्रेष्ठ है। 'रस-लिंग' 'बाण-लिंग' की अपेक्षा कोटि-गुना फल-दायक होता है। 'रस' या पारद के लिंग के गुणों को बताने में भगवती शङ्करी ही समर्थ हैं। 'रस-लिंग' में अणिमादि सिद्धियाँ विद्यमान रहती हैं।

'केदार-खण्ड' में बताया है कि रत्न और धातु के भी लिंग कहे गए हैं, जो पवित्र और पूजनीय होते हैं तथा सभी प्रकार के फल-दाता भी हैं। इन सबमें 'काश्मीर लिंग' विशेष माना गया है। 'काश्मीर-लिंग' से 'बाण-लिंग' श्रेष्ठ है, जिससे अधिक पवित्र लिंग इस संसार में दूसरा नहीं दिखाई देता। इसकी पूजा से ऐहिक और पारलौकिक सभी फल प्राप्त होते हैं।

अशुभ लिंग—खुरदरे 'बाण-लिंग' से पुत्र और पत्नी का नाश होता है। चिपटे की पूजा करने से गृह नष्ट होता है। एक ओर को झुका होने से गाय, पुत्र, पत्नी और धन का नाशक होता है। शिर पर टूटा-फूटा होने से रोग और मृत्यु-कारक होता है। छेद होने से देश-निकाला होता है। लिंग पर कर्णिका दिखाई दे, तो पूजा करनेवाला रोग से पीड़ित होता है।

'हेमाद्रि' के अनुसार टेढ़ा और तीक्ष्ण अग्र-भाग वाला तिकोना लिंग वर्जित है। बहुत मोटा, बहुत पतला, छोटा या दोष-युक्त लिंग गृहस्थों को नहीं लेना चाहिए।

शुभ-लिंग—'वीर-मित्रोदय' के अनुसार कपिल वर्ण का लिंग धन-दायक और मेघ-वर्ण मोक्ष-प्रद होता है। गृहस्थों को भौंरे के वर्णवाले लिंग की पूजा करनी चाहिए। वह सब प्रकार मन्त्र-संस्कार के बिना भी सिद्धि और मुक्ति-दायक होता है।

बाण-लिंग की उत्पत्ति आदि—'सूत-संहिता' में भैरव का कथन है कि वाणासुर भगवान् शिव का परम भक्त था। उसने क्रोध को जीत लिया था और शिव की पूजा में लगा रहता था। प्रतिदिन लिंग की स्थापना कर उसकी पूजा किया करता था। प्रसन्न होकर शङ्कर प्रकट हुए और उससे वर माँगने को कहा। बाण ने यह वर माँगा कि 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आपका लिंग निर्माण करने में मुझे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा है क्योंकि शास्त्र में निर्दिष्ट लक्षणवाले लिंग दुर्लभ हैं। अतः आप शुभ लक्षणवाले लिंगों को सुलभ बनाने की कृपा करें, जिससे सबका कल्याण हो।'

उसकी प्रार्थना सुनकर शङ्कर ने कैलास की चोटी से कोटि लिंगों और चौदह सिद्ध लिंगों को को उत्पन्न किया। बाणासुर ने उन लिङ्गों की पूजा की और सिद्धि-प्राप्ति के लिए उन्हें स्थान-स्थान पर छिपा दिया। उन्हीं लिङ्गों में से तीन कोटि लिङ्ग कालिका-गर्त में, तीन कोटि श्रीशैल में, एक कोटि कन्यकाश्रम में, एक कोटि माहेश्वर में, एक कोटि कन्या-तीर्थ में, एक कोटि महेन्द्र में और एक कोटि लिङ्ग नेपाल में सुरक्षित हैं।

वाणासुर के लिए उक्त लिङ्ग रचे गए, अतः उन्हें 'वाण-लिङ्ग' कहा जाता है। अथवा 'वाण' अर्थात् 'शिव'—इस प्रकार लिङ्गों में शिव का अवस्थान या स्वरूप होने से वैसा नाम पड़ा है। 'स्वयम्भू-लिङ्ग' के समान ही 'वाण-लिङ्ग' की पूजा से भुक्ति और मुक्ति मिलती है। निर्दिष्ट पुण्य-स्थानों में पूजा करने से सहस्र-गुना अधिक फल मिलता है। ये स्थान हैं—श्रीशैल, कालिका-गर्त, लिङ्गाद्रि, कन्यकाश्रम, कन्या-तीर्थ, महेन्द्र या सुरेश्वर वन। यहाँ स्थित लिङ्ग शिव द्वारा ही रचित हैं।

वाण-लिङ्ग में आवाहनादि नहीं—'सिद्धान्त-शेखर' के अनुसार वाण-लिङ्ग में आवाहनादि नहीं किया जाता। 'भविष्य-पुराण' में कहा है कि तीनों भुवनों में वाण-लिङ्ग स्थित हैं। उनके लिए प्रतिष्ठा, संस्कार और आवाहन की आवश्यकता नहीं होती।

वाण-लिङ्ग का स्मरण और फल—'योग-सार' के ५ वें परिच्छेद में बताया है कि ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर जो वाण-लिङ्ग को स्मरण करता है, उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। वहीं वाण-लिङ्ग का ध्यान भी बताया है। यथा—

ॐ प्रमत्तं शक्ति-संयुक्तं वाणाख्यं च महा-प्रभं। काम-वाणान्वितं देवं संसार-दहन-क्षमं।
शृङ्गारादि-रसोल्लासं वाणाख्यं परमेश्वरं। एवं ध्यात्वा वाण-लिंगं यजामि परमं शिवम्॥

इस प्रकार ध्यान कर वाण-लिङ्ग में परम शिव का गन्ध-पुष्पादि द्वारा मानस पूजन कर मन्त्र का जप करे। कहा है कि प्राणायाम कर वाण-लिङ्ग को सन्तुष्ट करे। उसके साथ इष्ट-देव के ऐक्य की भावना कर वाग्भव (ऐं) का जप करना चाहिए। जप पूरा कर निम्न स्तोत्र से प्रसन्न करे—

वाण-लिङ्ग-स्तोत्रम्

ॐ वाण-लिङ्ग, महा-भाग ! संसारात् त्राहि मां प्रभो! नमस्ते चोग्र-रूपाय नमस्ते व्यक्त-योनये ।
संसार-कारिणे तुभ्यं नमस्ते सूक्ष्म-रूप-धृक् ! प्रमत्ताय महेन्द्राय काल-रूपाय वै नमः ।
दहनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते योग-कारिणे । भोगिनां भोग-कर्त्रे च मोक्ष-दात्रे नमो नमः ।
नमः कामाङ्ग-नाशाय नमः कल्मष-हारिणे । नमो विश्व-प्रदात्रे च नमो विश्व-स्वरूपिणे ।
वाणस्य वर-दात्रे च रावणस्य क्षयाय च । रामस्यानुग्रहार्थाय राज्याय भरतस्य च ।
मुनीनां योग-दात्रे च राक्षसानां क्षयाय च । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः ।
ऐं दाहिका-शक्ति-युक्ताय महा-माया-प्रियाय च । भग-प्रियाय सर्वाय वैरिणां निग्रहाय च ।
परित्राणाय योगिनां कौलिकानां प्रियाय च । कुलाङ्गनानां भक्ताय कुलाचार-रताय च ।
कुल-भक्ताय योगाय नमो नारायणाय च । मधु-पान-प्रमत्ताय योगेशाय नमो नमः ।
कुल - निन्दा-प्रणाशाय कौलिकानां सुखाय च । कुल-योगाय निष्ठाय शुद्धाय परमात्मने ।
परमात्म-स्वरूपाय लिङ्ग - मूलात्मकाय च । सर्वेश्वराय सर्वाय शिवाय निर्गुणाय च ।

फल-श्रुति—इत्येतत् परमं गुह्यं वाण-लिङ्गस्य शङ्कर ! यः पठेत् साधक-श्रेष्ठो गाणपत्यं लभेत् सः ।
स्तवस्यास्य प्रसादेन योगित्वमाप्नुयात् । राज्यार्थिनां भवेद् राज्यं भोगिनां भोग एव च ।
साधूनां साधनं देव ! कौलिकानां कुलं भवेत् । यं यं कामयते मन्त्री तं तमाप्नोति लीलया ।
वाण - लिङ्ग - प्रसादेन सर्वमाप्नोति सत्वरं । किमन्यत् कथयामीह सर्वं वेत्सि कुलेश्वर !
महा-भये समुत्पन्ने राज - द्वारे कुलेश्वर ! देशान्तर-भये प्राप्ते दस्यु-चौरादि-संकुले ।
पठनात् स्तव-राजस्य न भयं लभते क्वचित् ।

।। इति श्रीयोग-सारे सर्वागमोत्तमे पार्वती-शिव-संवादे वाण-लिङ्ग-स्तोत्रं समाप्तं ।।

वाण-लिङ्ग के माहात्म्य को सुनने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है। योगियों को अपनी योग-साधना में, कौलिकों को कुलाचार के पालन में, पशु-भाववालों को शत्रु-सङ्कट में, वेदज्ञों को वेद-पाठ में, रोगियों को रोग दूर करने के प्रयत्न में वाण-लिङ्ग की सदा आराधना करनी चाहिए। जो इसकी आराधना नहीं करता, उसे अपने साधना-प्रयत्न में सफलता नहीं मिलती।

रौद्र-लिंग-लक्षण—'वीर-मित्रोदय' के अनुसार नदी में धारा के वेग से एक-दूसरे से घर्षण के फल-स्वरूप चिकने और समान बन जानेवाले 'रौद्र-लिंग' कहलाते हैं। 'समुच्चय' में भी कहा है कि नदी के प्रवाह में वाण-लिंग के समान आकृति वाले अन्य लिंग भी 'रौद्र लिंग' माने जाते हैं। श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण रंग के विप्रों द्वारा पूजित होते हैं। कृष्ण-वर्णवाले सभी जातियों के लिए सिद्धि-दायक हैं। नर्मदा से उत्पन्न 'रौद्र-लिंग' वाण-लिंग के समान ही माने जाते हैं।

शिव-नाभि-लक्षण—'वीर-मित्रोदय' में बताया है कि उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकार के लिंग होते हैं। चार अंगुल ऊँचे, सुन्दर वेदिकावाले उत्तम, उसके आधे मध्यम और मध्यम के आधे ऊँचे अधम लिंग कहे गए हैं। वहीं इनकी महिमा बताई है कि शिव-नाभि-मय लिंग की पूजा श्रेष्ठ होती है।

दैव-लिङ्ग-लक्षण—'सिद्धान्त-शेखर' के अनुसार हाथ के सम्पुट को स्पर्श करनेवाला जो लिंग शूल, टङ्क और चन्द्र से भूषित हो, रेखा-कोटर से युक्त, निचाई-ऊँचाई से रहित हो, वह 'गोल-लिंग' कहलाता है। जो कूष्माण्ड-फल के आकार का हो और नाग-रंग फल के समान हो, वह 'गोलक' कहा जाता है। काक-डिम्ब-फल के आकारवाला 'गोल-लिंग' कहलाता है।

आर्ष लिंग का लक्षण—विविध विल्व-फलों के आकारवाले और ब्रह्म-सूत्र-युक्त जो लिंग मूल भाग में स्थूल हो और कैथे के फल जैसा हो। अथवा नाल-फल के आकार का हो और मध्य में स्थूल हो, उसे 'ऋषि-लिंग' कहते हैं।

लिङ्ग के लक्षण—लिंग दो प्रकार के होते हैं—१ कृत्रिम, २ अकृत्रिम। स्वयम्भू-लिंगादि अकृत्रिम लिंग हैं। धातु आदि के लिंग कृत्रिम लिंग हैं। 'सिद्धान्त-शेखर' के अनुसार १ अचल, २ चल भेद से दो प्रकार के लिंग होते हैं। उनमें से प्रत्येक पाँच प्रकार के होते हैं। मन्दिर में प्रतिष्ठित लिंग 'अचल' हैं, जो शिला आदि के बने होते हैं। घर में स्थापित 'स्थिर' लिंग होते हैं। ये लिंग पाँच प्रकार के होते हैं—१ स्वयम्भू, २ दैव, ३ पालक, ४ आर्ष और ५ मानस। 'दीपिका' के अनुसार स्वयं व्यक्त होनेवाला 'स्वयम्भू लिंग' होता है। 'धमनी' नाड़ी के स्पर्श से वह शीघ्र ही प्रज्वलित हो उठता है। 'धमनी' नाड़ी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना से अलग है, जो ब्रह्म-रन्ध्र का भेदन कर लिंगित होती है।

स्वयम्भू लिङ्ग के लक्षण—'सिद्धान्त-शेखर' के अनुसार अनेक छिद्रों से संयुक्त, विविध वर्णों-वाला, जिसका मूल दिखाई नहीं देता और भूमि में कर्कश-रूप का दृष्टिगत होता है, वही 'स्वयम्भू लिंग' है, अन्य लिंग लक्षणों से रहित होते हैं। यह 'स्वयम्भू-लिंग' अनेक प्रकार का है। शङ्ख के समान मस्तक-वाला 'वैष्णव', पद्म जैसा मस्तक-वाला 'ब्राह्म' और छत्र जैसा 'शाक्र' कहलाता है। दो शिरवाला 'आग्नेय', तीन पैरवाला 'याम्य', खड्ग जैसा 'नैऋत', कलश की आकृतिवाला 'वारुण', ध्वज के समान 'वायव्य', गदा जैसा 'कौवेर', त्रिशूल के समान 'ईशान' होता है। लोकपालादि द्वारा निकाले गए ये सब 'स्वयम्भू-लिंग' माने गए हैं।

लिङ्ग बनाने के द्रव्यादि—'मत्स्य-सूक्त' में कहा है कि मद्रेश के स्वयम्भू-लिंग के दर्शन से सब पापों से छूटकर प्राणी पर-ब्रह्म में लीन हो जाता है। वहीं इनकी पूजा का फल बताया है कि शिला से बने लिंग द्वारा भुक्ति और मुक्ति दोनों मिलती हैं। मिट्टी का लिंग भुक्ति के लिए प्रशस्त है, क्रमशः उससे मुक्ति भी मिलती है। इसी प्रकार काष्ठ-लिंग को समझना चाहिए। स्वर्ण का बना लिंग स्थायी रूप से लक्ष्मी और राज्यैश्वर्य देता है। ताँबे के लिंग से पुत्रों की वृद्धि होती है और राँगे का लिंग आयु को बढ़ाता है।

'पद्म-पुराण' के अनुसार पारद के लिंग से महान् विभूति, मोती के लिंग से सौभाग्य, चन्द्र-कान्त के लिंग से मृत्यु पर विजय और स्वर्ण के लिंग से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है।

'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'कल्पोत्तर' के अनुसार मिट्टी का लिंग सभी फलों का देनेवाला होता है। उसी प्रकार मणियों का लिंग भी सर्व-फल-दायक माना गया है। 'अनन्त' आदि आठ मणियाँ विद्युत् के समान उज्ज्वल होती हैं, जो रात्रि में प्रकाश फैलाती हैं और सभी विषों को शान्त करती हैं। रस, गन्ध और रूप से वे विविध प्रकार की होती हैं। वज्रादि, स्फाटिकादि, गुड़ और अन्नादि से निर्मित लिंग सभी कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

'लक्षण-समुच्चय' में लिखा है कि गन्ध से बना सौभाग्य-दायक, पुष्पों से बना मुक्ति-प्रद और विविध वस्तुओं से बना लिंग विविध फल-दायक होता है। बालू का गुण और सौभाग्य-प्रद, लवण का उच्चाटन में और पाश-युक्त सिरवाला शत्रु-नाशक होता है।

'गरुड़ पुराण' में बताया है कि कस्तूरी दो भाग, चन्दन चार भाग, कुंकुम तीन भाग, शशि (कपूर) चार भाग—इन सबको मिलाकर गन्ध-लिंग बनाए। भक्ति-पूर्वक इसकी पूजा करने से उपासक

सपरिवार शिव का सायुज्य लाभ करता है। पुष्प-मय लिंग हय-गन्ध से युक्त बनाए। इसकी पूजा से राजैश्वर्य भोगकर गणेश्वर का पद मिलता है। मिट्टी बने लिंग की जो भक्ति-पूर्वक पूजा करता है, वह विद्याधर का पद पाकर बाद में शिव-स्वरूप होता है। धन की इच्छावाला गोबर का लिंग बनाये। गोबर भूमि पर गिरने न पाए, ऊपर से ही कपिला गाय का गोबर ग्रहण कर ले।

जौ, गेहूँ और धान की लकड़ी से बने लिंग के पूजन से क्रमशः धन, कामना और स्वास्थ्य की पूर्ति होती है। आरोग्य-वृद्धि के लिए गन्ने या चीनी के लिंग की पूजा करे। वश्य कर्म में हरिताल और त्रि-कटु (सोंठ, पीपल, मरिच) से युक्त नमक द्वारा बने लिंग का प्रयोग करे। गाय के घी से बने लिङ्ग की पूजा से बुद्धि बढ़ती है। नमक से सौभाग्य, मिटटी से सभी कामनाओं की पूर्ति, तिल-पिष्ट और तुष से मारण, भस्म से सभी फलों की प्राप्ति, गुड़ से प्रेम की वृद्धि, गन्ध से गुण, शर्करा से सुख, बाँस के अंकुर से वंश-वृद्धि, गोबर से सभी रोगों का नाश, केशास्थि से सभी शत्रुओं का नाश, पिष्ट से बने लिङ्ग द्वारा क्षोभण और मारण, वृक्ष-काष्ठ से दरिद्रता का नाश, पिष्ट से विद्या-प्राप्ति, दधि-दूध से यश, लक्ष्मी और सुख की प्राप्ति, धान्य से धान्य-प्राप्ति, फल से फल-प्राप्ति, पुष्प से दिव्य भोग और दीर्घायु, धात्री-फल से मुक्ति, मक्खन से यश और सौभाग्य की वृद्धि, दूब के टुकड़ों से अकाल मृत्यु का निवारण, कपूर से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'सार-संग्रह' के अनुसार मोती, नीलम, स्फटिक आदि रत्नों से बने लिङ्ग-पूजन से विविध फल प्राप्त होते है। 'कालोत्तर' में स्वर्ण, रजत, कांस्य, पीतल, सीसा आदि धातु-जन्य लिङ्ग-पूजा के फल बताये हैं, जिनकी पुष्टि 'मत्स्य-सूक्त', 'लक्षण-समुच्चय', 'लिङ्ग-पुराण' के वचनों से भी होती है। 'मातृका-भेद तन्त्र', पटल १२ में कहा है कि पार्थिव शिव की पूजा करनेवाला सभी सिद्धियों को पाता है। पत्थर में शिव-पूजा करने से दूना फल मिलता है। स्वर्ण-लिङ्ग की पूजा करने से शत्रुओं का नाश होता है। चाँदी में पूजा करने से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। ताम्र-लिङ्ग की पूजा से पुष्टि होती है। स्फटिक और मरकत की पूजा से सर्व-सिद्धियाँ मिलती हैं। लोहे में पूजा करने से शत्रुओं का नाश होता है। भस्म या बालू से बने लिङ्ग की पूजा करने से अभीष्ट कामना की पूर्ति होती है। गोबर के लिङ्ग की पूजा से शत्रु-नाश होता है। सभी प्रकार के लिङ्गों से धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'षट्-कर्म-दीपिका' में उद्धृत 'शिव-धर्म' में कहा है कि ब्रह्मा नित्य शैल-मय शुभ लिङ्ग की पूजा करते हैं, जिससे उन्हें उत्तम ब्रह्मत्व की प्राप्ति हुई। विष्णु इन्द्र-नील-मय लिङ्ग की पूजा करते हैं, जिससे सब जीवों को पालन करनेवाला विष्णु-पद उन्हें मिला है। वरुण सदैव स्फटिक के निर्मल लिङ्ग की पूजा करते हैं, जिससे तेज और बल से युक्त वरुणत्व उन्हें प्राप्त हुआ है।

'मातृका-भेद-तन्त्र' के अनुसार बिना संस्कार किए लिङ्ग-पूजन नहीं करना चाहिए।

शिव-लिङ्ग का संस्कार—रजत या स्वर्ण-लिङ्ग को स्वर्ण-पात्र में रखे। तीन दिनों तक दुग्ध से 'त्र्यम्बक'-मन्त्र द्वारा उसे स्नान कराये और काल-रुद्र की पूजा करे। वेदी पर सोलह उपचारों द्वारा पार्वती की पूजा करे। फिर गङ्गा-जल से उस लिङ्ग को तीन दिन तक स्नान कराये। तब वेदोक्त विधि से संस्कार करे। फल-विशेष की कामना से लिङ्ग-पूजा की अनेक विधियाँ बताई गई हैं।

सुन्दर लक्षणों वाला लिङ्ग ग्रहण करना चाहिए। सुलक्षण-रहित लिङ्ग को छोड़ देना चाहिए। दीर्घता कम होने से रोग होते हैं और अधिक होने से शत्रुओं की वृद्धि होती है। मान कम हो, तो नाश और अधिक हो, तो बच्चों का क्षय होता है। विस्तार अधिक होने से राष्ट्र का नाश होता है। पीठ-हीन

से दरिद्रता होने आती है। शिर के न होने से वंश-नाश होता है। ब्रह्म-सूत्र से रहित हो, तो राष्ट्र का नाश होता है। अतः प्रयत्न करके सुलक्षण लिङ्ग की ही पूजा करनी चाहिए।

शक्ति-सहित शिव-लिङ्ग-पूजा का फल—'लिङ्गार्चन तन्त्र' के दूसरे पटल में देवी की जिज्ञासा है कि इन्द्रियों से रहित भगवान् सदा-शिव का कोई आकार नहीं है, तो उनकी पूजा से क्या फल मिलेगा ? इसके उत्तर में शिवजी कहते हैं कि प्रेत की पूजा कभी नहीं होती है। रुद्र की शक्ति 'रौद्री' कही गई हैं। वहीं आद्या कुण्डलिनी हैं, जो ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका हैं। साढ़े तीन फरों द्वारा वे शिव को लपेट कर सदा स्थित रहती हैं। शक्ति के बिना शिव प्रेत-स्वरूप ही रहते हैं। शक्ति के सम्मिलन से ही वे कर्म-शील होते हैं। अतः शक्ति-सहित ही शिव-लिङ्ग की पूजा करनी चाहिए।

पार्थिवादि लिङ्ग का परिमाण—'मातृका-तन्त्र' के सातवें पटल में बताया है कि मिट्टी एक तोला या दो तोले लेनी चाहिए। 'षट्-कर्म-दीपिका' में उद्धृत 'विश्वसार तन्त्र' में भी यही मात्रा बताई है। तीन सूत के बराबर बनाना चाहिए। अपने अँगूठे की पोर बराबर लिङ्ग बनाकर उसकी पूजा करे। इससे कल्पोक्त फल की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं।

'कालोत्तर' में त्रि-सूत्रीकरण के सम्बन्ध में बताया है कि लिङ्ग, वेदी और पीठ में सम-सूत्र का निपातन होना चाहिए। 'समता' ही त्रिसूत्रीकरण है।

'लिङ्गार्चन तन्त्र', तीसरे पटल में कहा है कि मिट्टी के भेद से चार प्रकार के पार्थिव लिङ्ग होते हैं—१ श्वेत, २ रक्त, ३ पीत और ४ कृष्ण। ब्राह्मण के लिए श्वेत, क्षत्रिय के लिए रक्त, वैश्य के लिए पीत और शूद्र के लिए कृष्ण मिट्टी का लिङ्ग हित-कर होता है।

'मातृका-भेद-तन्त्र' में बताया है कि शिलादि में स्थूल लिङ्ग फल-प्रद होता है। रुद्राक्ष लिंग स्थूल से भी स्थूल हो, तो उसका पूजन करने और उसे धारण करने से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं।

शिला, स्फटिक, मरकत आदि में पञ्च-सूत्रीकरण की विधि कही गई है। लिंग से वेदी दुगनी और योनि उसकी आधी मानी गई है। अँगूठे से छोटा कभी न बनाना चाहिए। रत्नादि के निर्माण में इच्छानुसार परिमाण रखा जाता है।

'लिङ्ग'-शब्द की व्युत्पत्ति—'स्कन्द-पुराण' के अनुसार आकाश को 'लिंग' कहा है और पृथ्वी उसकी 'पीठिका' है। 'लयन' करने से—सब देवताओं का 'आलय' (निवास) होने से 'लिंग' नाम पड़ा है।

लिङ्ग की महिमा—'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'स्कन्द-पुराण' में शिव का कथन है कि 'मैं पुष्प, धूपादि के निवेदन-पूजन से प्रसन्न नहीं होता। लिंग में मेरी पूजा होने से ही मैं परम प्रसन्न होता हूँ। जो मेरे लिंग-पूजन में लगा रहता है, वह सभी पापों से छूटकर मुझे प्राप्त करता है। वस्त्र से छाने हुए जल द्वारा जो लिंग को स्नान कराता है, वह लाखों अश्व-मेध यज्ञों का पुण्य पाता है। सुगन्धित चन्दनादि से जो लिंग को लिप्त करता है, वह सुर-सुन्दरियों द्वारा दिव्य गन्धादि से विभूषित किया जाता है।'

वहीं शिव-नारद-संवाद में कहा है कि जो लिंगार्चन नहीं करता, उसको बड़ी हानि होती है। बहुत से दान, अनेक व्रतादि नियम, यज्ञादि करने से जो पुण्य मिलता है, वह केवल लिंग-पूजा करने से मिल जाता है। चारों वेदों और शास्त्रों में बताया है कि लिंगार्चन से बढ़कर अन्य कोई विधान नहीं है। भोग और मोक्ष-दायक लिंग के पूजन से अनेक प्रकार की आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और शिव का सायुज्य प्राप्त होता है। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को अन्य सभी क्रियाओं को छोड़कर परम भक्ति के साथ एकमात्र शिव-लिंग की पूजा करनी चाहिए।

'मत्स्य-सूक्त', पटल १६ में कहा है कि सहस्रों अश्वमेधों और सैकड़ों वाजपेय यज्ञों का पुण्य भी शिव-लिंग की पूजा के पुण्य की समता नहीं कर सकता।

'लिंग-पुराण' और 'मातृका-भेद-तन्त्र' में लिखा है कि शिव की पूजा करने से मनुष्य चतुर्वर्ग का अधिकारी होता है। आठों ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर वह साक्षात् नारायण-स्वरूप बन जाता है। भगवान् शम्भु की पूजा से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल में स्थित सभी देवों की पूजा हो जाती है।

'षट्-कर्म-दीपिका' में उद्धृत नारद-वचन है कि इस असार संसार में चार ही बातें सार-पूर्ण हैं—१ काशी में रहना, २ सन्तों की संगत, ३ गंगा-जल और ४ भगवान् शिव का पूजन।

'स्कन्द-पुराण' में कहा है कि अग्नि-होत्र, त्रि-वेद, यज्ञ, पुष्कल दक्षिणा—ये सब शिव-लिंगार्चन के कोटि-अंश की भी बराबरी में नहीं ठहरते। प्राणियों का संहार कर—इस सारे संसार का भी नाश कर यदि कोई भगवान् शङ्कर की उपासना कर ले, तो उसे कुछ भी पाप नहीं लगता। अनेक सहस्र जन्मों तक विभिन्न योनियों में घूमता हुआ जीव लिंगार्चन के बिना मोक्ष नहीं पा सकता।

'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'स्कन्द-पुराण' के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अनुलोम से उत्पन्न प्राणियों को सदैव लिंग की पूजा यथा-योग्य वैदिक या तान्त्रिक नाम-मन्त्रों से करनी चाहिए।

'लिंग-पुराण' में कहा है कि लिंग के मूल-भाग में ब्रह्मा, मध्य-भाग में तीनों भुवनों के स्वामी विष्णु और रुद्र के ऊपर प्रणव-नामक महा-देव सदा-शिव हैं। लिंग की वेदी महा-देवी हैं और लिंग साक्षात् महेश्वर हैं। अतः इन दोनों की पूजा से देवो और देव दोनों सम्पूजित होते हैं।

पारद शिव-लिङ्ग की महिमा—'मातृका-भेद-तन्त्र', पटल ८ में बताया है कि कैलास में ज्योति-र्मय महा-लिंग है। उसी का सोलहवाँ अंश काशी में विश्वेश्वर-रूप से स्थित है। पूर्ण-लिंग शिव का बीज ही है, जैसे शिला के मध्य में स्थित चक्र लक्ष्मी-नारायण-स्वरूप होता है।

'प' विष्णु-रूप है, 'आ' स्वयं कालिका है, 'र' शिव और 'द' ब्रह्म-रूप है। इस प्रकार 'पारद' ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है। जो पारे से बने लिंग को पूजा करता है, वह अणिमादि विभूतियों से सपन्न होकर शिव-स्वरूप बन जाता है।

पारद लिङ्ग बनाने की विधि—पारे का लिंग बनाने में बड़े विघ्नों का सामना करना पड़ता है। अतः पहले शान्ति और स्वस्त्ययन - पाठ कर लेना चाहिए। पारा शिव का बीज है, इसलिए उसे ठोंका-पीटा नहीं जाता। उसे ठोंकने-पीटने से धन-नाश, रोग और मृत्यु तक सम्भव है।

द्वादश लिंगों का षोडशोपचारों से पूजन करे। दो श्वेत रेशमी वस्त्र चढ़ावे। विहित भोग्य पदार्थ निवेदित कर मधुपर्क प्रदान करे। यथा-शक्ति आभूषण दे और प्रयत्न करके बिल्व-पत्रों से पूजन करे। 'तोड़ल तन्त्र' में बताई विधि से प्रत्येक मन्त्र का दस-दस सहस्र जप करे। पहले पूजा के अन्त में मन्त्र का जप करे। 'दक्षिणा' देने तक के सभी कर्म हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहते हुए करने चाहिए। ताम्बूल और मत्स्य को कभी न छोड़े। इस तन्त्र के अनुसार ताम्बूल और मीन उत्तम हविष्य माने गए हैं। दशांश या शतांश होम कर होम की दक्षिणा प्रदान करे।

इस प्रकार करने से विघ्न सामने नहीं आयेंगे। अगले दिन पारा ले आये। उसके ऊपर नवात्मक बन्ध-मन्त्र का जप करे। व्योम-बीज (हं), शिवार्ण (हं), विन्दु-युक्त वर्णाद्य (अं), इन्दु-युक्त-वायु-बीज-त्रय (यं यं यं) और 'त्र्यम्बकं'—इस मन्त्र का जप औषध के ऊपर करे। पारे के ऊपर १०८ बार जप कर औषध मिलाने से पारा बँध जाता है, अन्यथा नहीं।

उसके बाद के दिन सब कर्म करने के लिए योग्य व्यक्ति का वरण करे। उसे दोनों कानों में चम्पक पुष्प के आकार वाले स्वर्ण-कुण्डल, गले में चतुष्कोण-युक्त स्वर्ण-माला, दोनों हाथों में दो रजत कङ्कन और अँगूठियाँ तथा दो पीले रेशमी वस्त्र प्रदान करे और उसको शिव-स्वरूप समझे।

शिव-लिङ्ग की उत्पत्ति—'नारद - पाञ्चरात्र', तृतीय रात्र के प्रथम अध्याय में नारद-ब्रह्मा-सम्वाद के अनुसार ब्रह्मा जी ने बताया कि सृष्टि की सारी प्रजा का प्रवर्तन स्त्री-पुरुष के जोड़ों द्वारा हुआ। एक-मात्र भगवान् शिव ने विवाह करने का विचार नहीं किया। इससे चिन्तित होकर देवताओं ने उपाय करने का आग्रह किया। तब देवताओं सहित ब्रह्मा जी भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने ब्रह्मा से कहा कि पहले शिवजी को मोहित कर सके, ऐसी योग्य नारी की कल्पना करिए। ब्रह्मा जी ने सुझाव दिया कि सब देवता चलकर प्रजापति दक्ष से अनुरोध करें कि हम सब तप द्वारा आद्या महा-माया को प्रसन्न करें, जिससे वे उनकी पुत्री-रूप में आविर्भूत हों और शङ्कर को मोहित करें। ऐसा ही किया गया और सभी देवों और दक्ष के तप से प्रसन्न होकर देवी कालिका प्रकट हुईं और उनसे वर माँगने को कहा। देवताओं ने वर माँगा कि—आप दक्ष की पुत्री बनकर शङ्कर को मोहित करें, यही हमारी कामना है।

यह सुनकर जगदीश्वरी कालिका ने ब्रह्माजी से कहा कि 'शङ्कर तो अभी बालक-वत् हैं। वे मुझे कैसे सन्तुष्ट कर सकेंगे ? आप मेरे योग्य किसी अन्य पुरुष की कल्पना करें।'

ब्रह्माजी ने कहा—शङ्कर सभी के गुरुदेव और हमारे परमेश्वर हैं। वे महा-वीर्यवान् और महा-तेजस्वी हैं। वे आपको सन्तुष्ट करेंगे। उनके समान अन्य कोई पुरुष कहीं नहीं है।

यह सुनकर देवी ईश्वरी ने दक्ष को दर्शन दिया और उनसे वर माँगने को कहा। खड्ग, कर्त्रिका, नील कमल और कपाल-धारिणी, कमर में व्याघ्र-चर्म से शोभिता, लम्बोदरी देवी को वर देने को उद्यत देखकर दक्ष ने अपने को धन्य माना और कहा कि 'यदि आप वर देना चाहती हैं, तो देवताओं की इच्छानुसार मेरी पुत्री होकर शङ्कर को मोहित करें।'

'ऐसा ही होगा', कहकर जगज्जननी अन्तर्ध्यान हो गईं। तब देव-गण उस स्थान को गए, जहाँ शङ्कर तप कर रहे थे। उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर उन सबने निवेदन किया कि 'हे भगवन् ! हम सब स्त्री-सहित सृष्टि-कार्य में तत्पर हैं। आप भी विवाह करें, जिससे सृष्टि की रक्षा हो। दक्ष के घर में महा-काली महा-माया का अवतार आपकी प्रसन्नता के लिए हुआ है। वे आपके योग्य हैं, इसमें सन्देह नहीं।'

शङ्कर ने कहा—तुम लोगों की प्रसन्नता के लिए मैं ऐसा ही करूँगा। तुम लोग मेरे विवाह हेतु शीघ्र प्रयत्न करो।

इस पर देवों ने जाकर दक्ष को सूचित किया और विवाह की व्यवस्था हो गई। विवाह हो जाने पर कृतार्थ देव-गण अपने-अपने स्थान को गए और शङ्करजी सती के साथ अपने स्थान पर आए और विहार करने लगे। कालान्तर में सती जब भगवान् शङ्कर का तेज सहन न कर पायीं, तो उन्होंने उस तेज को पृथ्वी पर गिरा दिया। वह तेज पाताल, स्वर्ग और भू-तल—सारे जगत् में व्याप्त हो गया। उस तेज से योनि-युक्त शिव-लिङ्गों का आविर्भाव हुआ और आगे भी होता रहेगा। जहाँ लिङ्ग है, वहाँ योनि है; जहाँ योनि है, वहाँ लिङ्ग है। ये दोनों शिव-शक्ति के सम्मिलित तेज के ही द्योतक हैं।

शिव-पूजा के अधिकारी—'उत्पत्ति तन्त्र' पटल ६४ में कहा है कि शाक्त, वैष्णव, सौर या गाणप कोई भी हो, शिवार्चन के बिना सिद्धि नहीं पाता। अतः सभी मानव मात्र शिव की पूजा के अधिकारी हैं।

शिव-पूजा न करने से दोष—'लिङ्गार्चन-तन्त्र', प्रथम पटल में बताया है कि सभी पूजाओं में लिङ्ग-पूजा का स्थान अन्यतम है। लिंग की पूजा किए बिना जो भी पूजा की जाती है, वह व्यर्थ होती है और लिङ्ग-पूजा न करनेवाला मरने पर नरक में जाता है। ब्राह्मण, वैश्य और क्षत्रिय यदि लिंग-पूजा नहीं करते, तो वे शूद्रत्व को प्राप्त होते हैं। अतः पहले विल्व-पत्रों से लिङ्ग-पूजा करे। फिर लिंग की प्रार्थना कर अन्य पूजन करे।

शिव-लिंग की स्थापना—'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'स्कन्द-पुराण' के अनुसार विधि-वत् शिव-लिंग की स्थापना करने से अनन्त पुण्य का लाभ होता है। विष्णु ने सैकड़ों ब्राह्मणों के बध के पाप से छूटने के लिए समुद्र के किनारे शिव-लिंग की स्थापना की थी।

शिव-लिंग की त्रि-काल पूजा—'मत्स्य-सूक्त' में लिखा है कि प्रातःकाल जो भक्ति-पूर्वक लिंग की पूजा करता है, उसे सौ कपिला गायों के दान का पुण्य मिलता है। मध्याह्न में पूजा करने से समस्त पृथ्वी के दान का फल प्राप्त होता है। 'षट्-कर्म-दीपिका' में उदधृत 'स्कन्द-पुराण' के अनुसार सायंकाल पूजा करने से एक लाख गायों के दान का पुण्य-लाभ होता है।

कामना-भेद से पार्थिव-लिङ्ग की संख्या—विद्यार्थी शत सहस्र, धनार्थी पचास सहस्र, पुत्रार्थी डेढ़ सहस्र, कन्यार्थी तीन सौ, विद्वान् दश सहस्र, राज्यार्थी शत सहस्र, कान्तार्थी पाँच सौ, मोक्षार्थी एक कोटि, ऐश्वर्य-कामी एक सहस्र, सौन्दर्यार्थी तीन सहस्र, तीर्थार्थी दो सहस्र, मित्रार्थी एक सहस्र, वस्त्रार्थी आठ सौ पार्थिव लिंगों का अर्चन करे।

मारण में सात सौ, मोहन में आठ सौ, उच्चाटन और वशीकरण में एक-एक सहस्र, स्तम्भन में एक सहस्र, महा-राज-भय में पाँच सौ लिंग निर्दिष्ट हैं। एक लिंग के अर्चन से पाप नष्ट होते हैं, दो लिंगों के पूजन से धन-प्राप्ति और तीन लिंगों के अर्चन से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। दस सहस्र लिंगों के पूजन से राज-भय दूर होता है। एक सहस्र के अर्चन से बन्धन से मुक्ति मिलती है। कारागार से छटने के लिए दस सहस्र का पूजन कराना चाहिए। डाकिनी आदि के भय को दूर करने के लिए पाँच सहस्र का अर्चन कराये। पुत्र-हीन को पचास सहस्र लिंगों का पूजन करना चाहिए।

'लिंगार्चन तन्त्र', नवें पटल में लिखा है कि दो लिंगों की एक साथ पूजा करने से दरिद्रता होती है। अतः प्रत्येक लिंग की अलग-अलग विल्व-पत्रों से पूजा करे।

तीसरा परिच्छेद

पार्थिव-शिव-पूजा की विधि

शिव-पूजा—'मत्स्य-सूक्त' के अनुसार तीर्थ की मिट्टी लाकर सुन्दर लिंग बनाकर शिव की पूजा करनी चाहिए। तीर्थ न मिले, तो नदी की और नदी न हो, तो 'क्षुद्र'-सोतों की मिट्टी का प्रयोग करे। पर्वत से निकलनेवाली धारा को 'नदी' कहते हैं। अन्य जल-प्रवाहों को 'क्षुद्र' माना गया है।

झरने की मिट्टी से सम्पत्ति मिलती है। सरोवर की मिट्टी विविध सुखों को प्रदान करती है। ये सब मिट्टियाँ न मिलें, तो गायों के चरने के स्थान की मिट्टी या जिस स्थान पर जाने से चित्त प्रसन्न होता हो, उस स्थान की मिट्टी का उपयोग करना चाहिए। मिट्टी सदा सुन्दर और शर्करा-रहित होनी चाहिए।

कुण्डली-सहित मिट्टी का लिंग बनाये। ऐसे लिंग की पूजा से देवी और शिव दोनों की पूजा हो जाती है क्योंकि कुण्डली देवी परमेश्वरी का ही रूप होती है। पहले मिट्टी को अनुलोम-विलोमात्मक मातृका मन्त्र (अं आं···हं लं क्षं लं हं ···आं अं) से दस बार अभि-मन्त्रित करे। फिर मिट्टी की प्रार्थना करे—

सर्व-शक्ति-मये, देवि, मृत्तिके त्रिदशेश्वरि ! निर्माय पार्थिवं लिंगं शिव-पूजां करोम्यहं।
त्वयि कामश्च धर्मश्च तत्-क्रमे सत्यपीश्वरि ! चतुर्वर्ग-प्रदे, देवि, नाना-रत्न-विभूषिते !
त्वां विना परमेशानि ! कुतो मोक्षः कुतः सुखं ! अर्थः कामश्च देवेशि ! त्वां विना नहि जायते ।।

'ॐ ह्रीं मृत्तिके, दुष्कृति-हरे ! ह्रीं ॐ' अथवा 'ॐ हराय नमः' इस मन्त्र से मिट्टी हाथ में लेकर 'मातृका-मन्त्र' (अं आं···हं लं क्षं) का उच्चारण कर 'ॐ महेश्वराय नमः' से उसे नमस्कार करे। फिर 'मातृका-मन्त्र' उच्चारण कर लिङ्ग बनाते हुये कहे—'शूल-पाणे ! सु-प्रतिष्ठितो भव।' अन्त में पुनः 'मातृका-मन्त्र' का उच्चारण करे। तब मिट्टी के शिव-लिङ्ग में प्राण-प्रतिष्ठा करे।

'तोडल तन्त्र', ५ वें पटल के अनुसार पहले गुरु-वन्दना करे। तब 'ॐ हराय नमस्कारं' से मिट्टी हाथ में ले और 'महेश्वराय नमस्कारं' से यत्न-पूर्वक लिङ्ग बनाकर 'शूल-पाणे ! इह सु-प्रतिष्ठो भव' इस मन्त्र से उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करे। 'हां हीं हूं हैं हौं हः' से उसमें षडङ्ग-न्यास करे।

'लिङ्गार्चन तन्त्र' में निर्देश है कि पहले भूत-शुद्धि करे। फिर मातृका-न्यास कर प्राणायाम करे। 'तोडल-तन्त्र' में ध्यान बताया है। यथा—

ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजत-गिरि-निभं चारु - चन्द्रावतंसं,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशु-मृग-वराभीति-हस्तं प्रसन्नं।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममर-गणैर्व्याघ्र-कृत्ति वसानं,
विश्वाद्यं विश्व-वीजं निखिल-भय-हरं पञ्च-वक्त्रं त्रि-नेत्रं।

'रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं' अर्थात् 'रत्नस्याकल्पो वेशस्तेनोज्ज्वलांगं यस्य तं'। 'व्याघ्र-कृत्तिः' अर्थात् चर्म। 'वस' आच्छादने तद्-'वसानं' अर्थात् 'आच्छादकम्'।

ध्यान कर अपने शिर पर पुष्प रखकर मानस पूजा करे। तब पुनः ध्यान कर लिङ्ग के शिर पर पुष्प रखकर कहे—

'पिनाक-धृक् ! इहावह इहावह, इह तिष्ठ इह तिष्ठ, इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि, इह सन्निरुद्धस्व, यावत् पूजां करोम्यहं । स्नानीयं पशु-पतये नमः । एतत् पाद्यं नमः शिवाय ।' इत्यादि ।

इसी प्रकार सभी वस्तुएँ नमस्कार-सहित प्रदान करे

शिव के षडक्षर-मन्त्र का उद्धार—**'नमः शिवाय'**—यह पञ्चाक्षर-मन्त्र पाँचों आम्नायों का फल प्रदान करता है । इसके आदि में प्रणव (ॐ) लगाने से षडक्षर मन्त्र बनता है—**'ॐ नमः शिवाय'** ।

शिव का अन्य मन्त्र— **'हौं अर्द्ध-नारीश्वराय हौं'** ।

अष्टाष्ट-मूर्ति की पूजा—१ सर्व, २ भव, ३ रुद्र, ४ उग्र, ५ भीम, ६ पशु-पति, ७ महा-देव और ८ ईशान । १ क्षिति, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ यजमान, ७ सोम, ८ सूर्य ।

सर्वत्र चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करे और आदि में 'ॐ', अन्त में 'नमः' जोड़कर वामावर्त्त से पूजा करे । शिव को उक्त अष्ट-मूर्तियाँ पूर्वादि क्रम से आग्नेय तक वेदी में पूजनीया हैं । लिंग में शिव को पूजा कर १०८ या १००८ बार मन्त्र का जप करे । तब जप-फल समर्पित करे—

'ॐ गुह्याति-गुह्य-गोप्ता त्वं गृहाणास्मत्-कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव ! त्वत्-प्रसादात् त्वयि स्थिते ।'

तब स्तोत्र-पाठ कर मुख-वाद्य बजाते हुये अष्टाङ्ग प्रणाम करे और संहार-मुद्रा द्वारा **'महा-देव ! क्षमस्व'** कहकर विसर्जन करे ।

शिव-पूजा का सूत्र—१ हर, २ महेश्वर ३ शूल-पाणि, ४ पिनाक-धृक्, ५ पशु-पति, ६ शिव, ७ महा-देव, ८ ईशान—इस क्रम से अष्ट-मूर्तियों को पूजा कर जप करे । तब मुख-वाद्य बजाये ।

'मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश' के अनुसार १ मिट्टी का लाना, २ लिङ्ग बनाना, ३ प्राण-प्रतिष्ठा, ४ ध्यान, ५ स्थापना, ६ पूजन, ७ विसर्जन—इस क्रम से १ हर, २ महेश्वर, ३ शूल-पाणि, ४ पिनाक-धृक्, ५ पशु-पति, ६ शिव, ७ महा-देव, ८ ईशान—का विधान है ।

तन्त्रान्तर के अनुसार १ शर्व, २ भव, ३ रुद्र, ४ उग्र, ५ भीम, ६ पशु-पति, ७ शिव, ८ ईशान कहे गये हैं । १ क्षिति, २ जल, ३ वह्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ यजमान, ७ सोम, ८ सूर्य—ये आठ मूर्तियाँ हैं । वामावर्त से वेदी में इन आठ मूर्तियों की पूजा कर कहे—**'यजमानः पूजक आत्मेति यावदत एव महिम्नः स्तवे त्वमु ! धरणिरात्मा त्वम् ।'**

पुष्प-दन्त द्वारा उक्त विधि बताई गई है । वेदी में वामावर्त्त-क्रम अर्थात् पूर्व दिशा से आग्नेय कोण तक अष्ट मूर्त्तियों की पूजा करनी चाहिए ।

शिव की पूजा किए बिना शक्ति-पूजादि करने में दोष—'तोडल तन्त्र' में बताया है कि पहले शिव की पूजा करे, तब शक्ति की पूजा करनी चाहिए । अतः सर्वत्र आदि में लिङ्ग-पूजा करनी चाहिए अन्यथा सारी पूजा निष्फल होती है ।

शिव-पूजा के उपयुक्त पुष्पादि और उनकी महिमा—'लिङ्गार्चन तन्त्र', ९ वें पटल के अनुसार पार्थिव लिङ्ग की गन्ध-पुष्पादि से पूजा कर पञ्च-मुख के प्रति पुष्प, चन्दन, विविध नैवेद्य, सुगन्धित या गन्ध-हीन द्रव्य अर्पित किए जाते हैं । यथा—विल्व-पत्र, कह्लार, तगर, मल्लिका, मालती, यूथिका, करवीर, पद्म, केतकी, कुन्द, आमलकी, कुमुद, कोक-नद, दूर्वा, तुलसी और धुस्तूर । धुस्तूर पुष्प के समान अन्य कोई पुष्प नहीं है । इस पुष्प को अर्पित करने से कोटि गो-दान का पुण्य मिलता है । 'अर्थ-काण्ड' में पुष्पों का वर्णन हो चुका है । यहाँ १० वें पटल में बताया है कि पार्थिव लिङ्ग पर विजया-पत्र चढ़ाने से अश्वमेध-यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।

शिव-लिङ्ग की काम्य-पूजा—१२ वें पटल में कहा है कि अपने घर में अपनी पत्नी या किसी अन्य सम्बन्धी के हाथ से बने पार्थिव शिव-लिंग की एक वर्ष तक भक्ति-पूर्वक षोडशोपचारों से पूजा करे। फिर प्रत्येक मास की अमावास्या, शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णिमा के दिन तथा मंगल या शनिवार और सोमवार को रहस्य-पूजा करे। इस पूजा की विधि यह है कि दिवा-काल में पूजित लिंग को मध्य रात्रि में विल्व-वक्ष के नीचे ले जाय और वहाँ नग्न होकर एक सहस्र विल्व-पत्रों से उसकी विधिवत् पूजा करे। विल्व-पत्र कीड़ों से कटे-फटे न हों और कोमल, मधुर तीन-पत्र से युक्त हों। उन्हें शुद्ध कर ले। तब मन्त्रोच्चारण करते हुए एक-एक विल्व-पत्र को अलग-अलग अर्पित करना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष तक, जो कामना मन में रखकर पूजा की जाती है, वह निश्चय ही शीघ्र पूर्ण होती है। कामना पूर्ण होने पर पूजा-स्थल में गड्ढा बनाकर उसमें लिंग को डाल दे। वहाँ जप कर 'क्षमस्व' कह कर विसर्जन करे। गोपनीय भाव से आत्म-समर्पण कर सानन्द ऐसा करनेवाला सदाशिव-स्वरूप होता है।

वहीं यह भी निर्देश किया है कि प्रति-दिन ब्रह्म-मय लिङ्ग की पूजा परम भक्ति के साथ करनी चाहिये। 'मातृका-भेद तन्त्र', १२वें पटल में लिखा है कि शिव-पूजा में शुद्ध या अशुद्ध का विचार नहीं किया जाता। प्रत्येक दशा में यथा-शक्ति विल्व-पत्रों द्वारा पूजा करनेवाला सब सिद्धियों से युक्त होकर शिव-रूप बन जाता है। ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर जो भी देवता हैं, वे सभी केवल शिव की पूजा करने से तृप्त हो जाते हैं।

शिव को अर्पित द्रव्यों का फल—कुश की नोक के बराबर जल से भी लिङ्ग की पूजा करने से वह जल सागर के समान होकर पुण्य प्रदान करता है। लिङ्ग के ऊपर एक पुष्प रखने से वह मेरु-पर्वत के बराबर फल-प्रद होता है। लिङ्ग के मस्तक पर जो अन्न रखा जाता है, उस अन्न का दान करने से पृथ्वी-दान का पुण्य मिलता है। केवल एक दूर्वा से जो शिव-लिङ्ग की पूजा करता है, उसे समस्त देवों के सिर पर अर्घ्य देने का फल मिलता है। साधारण जल से भी महेश्वर को जो स्नान कराता है, वह साढ़े तीन कोटि तीर्थों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त करता है।

'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'पाराशर' और 'माधवीय' में कहा है कि सहस्र कलशों के जल से जो शिव का अभिषेक करता है, वह दीर्घ-जीवी होता है। वहीं लिखा है कि एक लाख दूध देनेवाली गायों के दान देने का जो पुण्य होता है, उससे भी अधिक पुण्य शिव के एक दिन के पूजन द्वारा मिलता है; अश्व-मेध के फल से भी अधिक फल शिव-पूजा से मिलता है।

'मत्स्य-सूक्त' में लिखा है कि घृत से स्नान कराये हुए लिङ्ग पर चन्दन का लेप करे। फिर कुंकुम से स्नान कराकर पूजन करे, दो श्वेत वस्त्र और सुन्दर मुक्ता-फल चढ़ाये। सुगन्धित धूप और दूध तथा खीर प्रदान करे। घृत - दीप से आरती करे। यह पूजा सभी कामनाओं को पूर्ण करती है। बिना होम के भी लिङ्ग-पूजा होम-युक्त होती है।

'मातृका-भेद तन्त्र' में कहा है कि लिङ्ग के ऊपर पुष्प, गन्ध, जल आदि द्रव्य चढ़ावे। शिव-लिङ्ग के मध्य में महा-अग्नि रहती है, इसी से वे रुद्र कहलाते हैं। अतः रुद्र के ऊपर जो कुछ भी चढ़ाया जाता है, वह भस्म हो जाता है। अतः शिव-पूजा साक्षात् होम ही है और शिव की पूजा करनेवाला महा-यज्ञेश्वर बन जाता है।

शिव-निर्माल्य के खाने में दोष—'लिङ्गार्चन तन्त्र', १२वें पटल में लिखा है कि लिङ्ग के ऊपर जो-जो द्रव्य चढ़ाया जाता है, वह सब परमात्मा शिव में लय हो जाता है। इस प्रकार लिङ्ग को अर्पित

सभी उपचार 'निर्माल्य' बन जाते हैं, जिससे उन्हें ग्रहण नहीं किया जाता। १३वें पटल में देवी का इस सम्बन्ध में प्रश्न है—'हे महा-देव ! निर्माल्य तो ब्रह्मादि के लिए भी दुर्लभ है। फिर तुम्हारा निर्माल्य क्यों नहीं ग्रहण किया जाता ?' इसके उत्तर में ईश्वर ने बताया कि 'ऊर्ध्व-मुख ईशान श्याम-वर्ण और तेजोमय है। समुद्र - मन्थन के समय जो विष निकला था, उसे उसी मुख द्वारा ग्रहण किया था। तभी से वह मुख सदा ज्वाला-मय रहता है और कण्ठ में विष सदा विद्यमान रहता है। इसी से निर्माल्य अग्राह्य है।'

१४वें पटल में कहा है कि 'ईशान' का ज्ञान बड़ा दुर्लभ है। उसे सुनने मात्र से शिव-पूजा का फल मिलता है। 'ईशान' नामक मुख साक्षात् पर-ब्रह्म है। उस मुख पर पत्र, पुष्प, जल आदि जो भी उपचार चढ़ाया जाता है, वह 'निर्माल्य' होकर तुरन्त अग्राह्य बन जाता है क्योंकि वह ब्रह्म-मय हो जाता है। इस 'निर्माल्य' को जो ग्रहण करता है, वह भ्रष्ट होता है और उसका उद्धार नहीं होता।...पवित्र उपचार को अन्य पात्र में रखकर उसे अभिमन्त्रित करे, तब उसे 'वामदेव' आदि मुखों को अर्पित करे। इससे सारा ब्रह्माण्ड तृप्त होता है। मेरे निर्माल्य को विष्णु - मन्त्र से विष्णु को अर्पित करे। विष्णु ही उसे ग्रहण कर सकते हैं। अन्य देव, असुर, मनुष्य और गन्धर्व, किन्नर आदि उसके अधिकारी नहीं हैं।

'पद्म-पुराण' में लिखा है कि शिव को अर्पित द्रव्य, अन्न, फल, जल को कभी न छुए। शिव के सारे निर्माल्य को कुएँ में डाल देना चाहिये। जो मक्खी के पैर के बराबर भी शिव की वस्तु को लोभ-वश ग्रहण करता है, वह कल्पान्त तक नरक में रहता है।

'पुराण-संग्रह' में शिव कहते हैं कि मेरे नैवेद्य को खाने से दोष होता है। उस दोष से छूटने के लिए चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए।

वाण-लिंग के निर्माल्य की ग्राह्यता—शिव-नारद के सम्वाद से ज्ञात होता है कि वाण-लिङ्ग को अर्पित सभी उपचारों को भक्तिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। वाण-लिङ्ग पर चढ़ाये हुये जल, पत्रादि 'प्रसाद' माने गए हैं। वहीं बताया है कि 'स्वयम्भू' आदि लिङ्गों के निर्माल्य को भी ग्रहण करना चाहिए।

'सिद्धान्त-शेखर' में कहा है कि पृथ्वी, स्वर्ण, गाय, रत्न, ताम्र, रौप्य, वस्त्र आदि को छोड़कर शेष निर्माल्य-द्रव्यों को ग्रहण न कर चण्डेश को निवेदित कर देना चाहिए। अर्थात् लिंग पर चढ़ाये गए वस्त्रादि को ग्रहण करने में दोष नहीं है। शालग्राम लिंग, ज्योतिर्लिङ्ग, स्वयम्भू-लिंग, इन्द्र नील-मणि) लिंग और प्रतिष्ठित लिंगों का निर्माल्य प्रसाद-रूप में ग्रहण करना चाहिये। हनुमान से शम्भु ने कहा है कि वाण-लिंग, पारद-लिंग और सिद्ध-प्रतिष्ठित लिंग को अर्पित उपचारों पर चण्ड का अधिकार नहीं होता। जिन उपचारों पर चण्ड का अधिकार है, उन्हें नहीं ग्रहण करना चाहिए और जहाँ चण्ड का अधिकार नहीं है, उस नैवेद्य का भक्ति-पूर्वक भोग करना चाहिये।

'पञ्च-पुरुषार्थ-प्रबोध' में शिव का वचन है कि 'हे वरारोहे ! मेरे नैवेद्य को जो खाता है, उसे दीक्षा, तप, ध्यान, उपासना की क्या आवश्यकता !' अर्थात् शिव के नैवेद्य को ग्रहण करने से अनायास ही उसे इन सबका पुण्य मिल जाता है।

'स्कन्द-पुराण', काशी-खण्ड में लिखा है कि श्रीविश्वनाथ के जल को शिर पर धारण करने से अन्य जन्म नहीं होता। जो स्नान कर लिंग-स्नान से प्राप्त जल को तीन बार पीता है, उसके तीनों पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। जो उस जल से अपने सिर का अभिषेक करता है, उसे गंगा-स्नान का पुण्य मिलता है। 'वाणेश्वरोपाख्यान' में कहा है कि शिव के निर्माल्य के स्पर्श से शरीर की भीतरी और बाहरी असाध्य व्याधियाँ भी नष्ट हो जाती हैं।

शान्ति-कर्मादि में शिव-पूजा का फल—'कुक्कुटेश्वर तन्त्र' में बताया है कि सौ तोले मिट्टी का उत्तम लिङ्ग बनाए। वश्य कर्म में घी या मधु से उसे स्नान कराये। शान्ति-कर्म में और मृत्यु-निवारण हेतु दूध से स्नान कराये। आकर्षण में मधु से और क्रूर कर्म में भस्म से स्नान कराये। द्रव्य सौ तोला लेना चाहिए। संविदा-चूर्ण का नैवद्य भी उतना ही होना चाहिए। विल्व-पत्र और पुष्प १०८ देने चाहिए। शान्ति-कर्मादि में द्रोण पुष्प और अभिचार में बर्बरा देना चाहिए। स्तम्भन और मोहन में कनक नामक धुस्तूर तथा विद्वेषण और उच्चाटन में जवा-पुष्प या अपराजिता चढ़ाना चाहिए।

चतुर्दशी से प्रारम्भ कर अगली चतुर्दशी तक एक-एक कर क्रमशः लिङ्ग की भक्ति से पूजा करे। प्रतिदिन १००८ जप करे। सप्ताह में सात लिङ्ग अथवा पञ्चाह में पाँच लिङ्ग पूजनीय हैं। चण्डोग्र के विधान से जप-पूजादि करे। वटुक या मञ्जु-घोष के मन्त्र से। शान्ति-कर्म में त्र्यम्बक-मन्त्र से जप-पूजा करे। उन-उन मन्त्र का जो विधान है, उसी का पालन करे।

जाति-नाश, वंश-नाश, आयु-नाश, महा-भय और सभी प्रकार के अभिचार-कर्मों से उत्पन्न होनेवाले सङ्कट के निवारण के लिए १०८ लिङ्गों की पूजा यत्न-पूर्वक करे। दूध की सतत धारा से नेत्र के अन्त तक अभिषेक करे। प्रयोग के आदि में रुद्राध्याय या नील-कण्ठ स्तव से शिव को प्रसन्न करे। यथा-शक्ति वस्त्र, आभूषण आदि प्रदान करे। तीनों लोकों में इससे बढ़कर सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला, सर्व-सौभाग्य-प्रद अन्य प्रयोग नहीं है। यही 'पाशुपत' नामक अस्त्र है। ब्राह्मणों को नम्रता-पूर्वक भक्ति के साथ यथा-शक्ति भोजन कराये। 'कालो-विलास तन्त्र' के अनुसार कलियुग में नील-कण्ठ का प्रयोग न करे।

शिव-स्तोत्र

ॐ सर्वज्ञ, ज्ञान-विज्ञान-प्रदायक, महात्मने ! नमस्ते सर्व-देवेश, सर्व - भूत-हिते रत !
अनन्त-कान्ति-सम्पन्न, अनन्तासन-संस्थित ! अत्यन्त-कान्ति-सम्भोग, परमेश, नमोऽस्तु ते।
सर्वार्थ-निर्मलाभोग, सर्व-व्याधि-विनाशन! योगि-योगि-महा-योगि-योगीश्वर ! नमोऽस्तु ते।
कृत्वा लिङ्गं प्रतिष्ठां च ध्यात्वा देवं सदा-शिवं। पूजयित्वा विधानेन स्तवमेतमुदीरयेत्।
लिङ्ग-स्तवं महा-पुण्यं यः शृणोति सदा नरः। नोत्पद्यते च संसारे स्थानं प्राप्नोति शाश्वतं।
तस्मात् सर्व - प्रयत्नेन शृणुयाच्च सु-संस्तवं। पाप-कञ्चुक-निर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदं ॥

॥ इति भविष्य-पुराणोक्त-लिङ्ग-स्तवः समाप्तः॥

शिव-कवच (रुद्र-यामले) भैरव उवाच—

वक्ष्यामि देवि ! कवचं मङ्गलं प्राण-रक्षणं। अहो-रात्रं महा-देव-रक्षार्थं देव-मण्डितं।

ॐ अस्य श्री महा-देव-कवचस्य वाम-देव ऋषिः, पंक्तिश्छन्दो, हंसौ निधो देवता, सर्व-साधने विनियोगः।

रुद्रो मामग्रतः पातु पृष्ठतः पातु शङ्करः। कपर्दी दक्षिणे पातु वाम-पार्श्वे तथा हरः।
शिवः शिरसि मे पातु ललाटं नील-लोहितः। नेत्रं नेत्र्यक्षरः पातु बाहु-युग्मं महेश्वरः।
हृदये च महा-देव ईश्वरश्च तथोदरे। नाभौ कुक्षौ कटि-स्थाने पादौ पातु महेश्वरः।
सर्वो रक्षतु भूतेशः सर्व-गात्राणि मे हरः। पाशं शूलं च दिव्यास्त्रं खड्गं च वज्रमेव च।
नमस्करोमि भूतेशं रक्ष मां जगदीश्वर ! पापेभ्यो नरकेभ्यश्च त्राहि मां भक्त-वत्सल !
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-काम-क्रोधादपि प्रभो! लोभ-मोहान्महा-देव! रक्ष मां त्रि-दशेश्वर !

त्वं गतिस्त्वं मतिश्चैव त्वं भूतिस्त्वं परायणः । कायेन मनसा वाचा त्वयि भक्तिर्दृढाऽस्तु मे ।
इत्येतद् रुद्र-कवचं पठनात् पाप-नाशनं । महा - देव - प्रसादेन भैरवेन च कीर्तितं ।
न तस्य पापं देहेषु न भयं तस्य विद्यते । प्राप्नोति सुखमारोग्यं पुत्रमायुः-प्रवर्द्धनं ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात् । विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमेव च ।
व्याधितो मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् । ब्रह्म-हत्यादि-पापं च पठनादेव नश्यति ।।
।। इति रुद्र-यामले श्रीशिव-कवचं समाप्तम् ।।

विल्व-वृक्षादि की महिमा—'योगिनी तन्त्र', पूर्व-खण्ड, ५ वें पटल में लिखा है कि विल्व-वृक्ष के मूल भाग से चारों ओर १६ हाथ की भूमि भगवान् शिव के कर-तल जैसी पवित्र है। उसके पत्ते शिव की जटा के समान पवित्र हैं। विल्व-पत्र के तीन दल ऋग्, यजु और साम-वेद के समान हैं। उसकी डालें सभी शास्त्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस प्रकार कल्प-वृक्ष के समान विल्व-वृक्ष ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है। श्रीशैल-पर्वत पर विल्व-वृक्ष से महा-लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ है। इस सम्बन्ध में यह कथा है कि शिव के ज्योति-रूप अंश की ब्रह्मादि देवता सदा स्तुति करते हैं। उन्हीं के अनुग्रह से सरस्वती विष्णु की सतत परम प्रिया हो गईं किन्तु लक्ष्मी को वैसी प्रीति विष्णु से प्राप्त न हुई। इससे चिन्तित होकर लक्ष्मी जी श्रीशैल पर गईं और वहाँ एकान्त में शिव-लिङ्ग की उपासना में लग गईं। उन्होंने कठोर तप किया किन्तु शिव की कृपा न हुई। तब वे वृक्ष-रूप में वहाँ स्थित हुईं और अपने पत्तों, पुष्पों, फूलों से कोटि वर्ष तक लिङ्ग की पूजा की। इसके फल-स्वरूप लक्ष्मी जी को विष्णु के वक्षःस्थल में निवास करने का अधिकार मिला और तभी से विल्व-वृक्ष में दिन-रात शिव का निवास हो गया। इस प्रकार यह वृक्ष सर्व-तीर्थ और सर्व-देव-मय होकर 'श्री-वृक्ष' कहलाने लगा।

विल्व-वृक्ष की लकड़ी का चन्दन जो अपने मस्तक पर लगाता है, उसके शरीर को शिव-स्वरूप मानकर लक्ष्मी देवी सहर्ष नमन करती हैं। अतः उस चन्दन को कोई नहीं लगाता और न ही उसके पत्ते या फल धारण करना चाहिए। विल्व-मूल में जिसकी मृत्यु होती है, वह पापी होता हुआ भी रुद्र-स्वरूप हो जाता है।

'पुरश्चरण-रसोल्लास', १० वें पटल में बताया है कि विल्व-वृक्ष साक्षात् भगवान् शङ्कर-स्वरूप है। विल्व-वृक्ष के नीचे प्राण छोड़नेवाला तत्काल मोक्ष प्राप्त करता है। भले ही विल्व-वृक्ष के नीचे का स्थान विष्ठादि से भरा हो, किन्तु वह सदा सभी तीर्थों, पीठों, तत्वों और देवों से युक्त रहता है। शङ्कर-क्षेत्र और गङ्गा को कभी न छोड़े। गङ्गा के समीप यदि विल्व-वृक्ष हो, तो वह स्थान काशी-पुरी के समान पवित्र तीर्थ होता है।

विल्व-वृक्ष के नीचे वेदी की महिमा—'योगिनी तन्त्र', मध्यम खण्ड, १२ वें पटल में लिखा है कि स्वस्ति-वाचन-पूर्वक वेदी की रचना करे। ईशान से अग्नि-कोण तक, फिर नैऋत कोण से वायु-कोण तक चारो दिशाओं में सम-तल भूमि ग्रहण करे। आठ हाथ लम्बी-चौड़ी और वितस्ति बराबर ऊँची वेदी बनानी चाहिए। महा-वेदी चारों ओर से सोलह हाथ की होती है। यह विधि सर्वत्र अर्थात् श्मशान आदि में भी विहित है। वहीं वेदी के स्थान बताये हैं—विल्व-मूल, श्मशान, वन, अश्वत्थ-मूल, नदी-तट, देव-गर्भ, चतुष्पथ, उज्जट, पर्वत, उद्यान, शिवालय, शून्य गृह, स्व-मन्दिर, वेश्या-गृह, लता-मण्डप, गोष्ठ इत्यादि।

'रुद्र-यामल' में भी वेदी का प्रमाण बताते हुए कहा है कि अश्वत्थ या विल्व के मूल-भाग में वेदी बनाये। उत्तर दिशा की ओर मुख कर वेदी बनानी चाहिए। ईशान कोण में सूत्र-पात कर अग्नि-

कोण में स्तम्भ-रोपण करे। आठ हाथ का विस्तार करे और वितस्ति बराबर ऊँची रखे। चार हाथ की वेदी मध्यम कोटि की मानी गई है।

पञ्च-वटी की स्थापना—'स्कन्द-पुराण' में लिखा है कि १ अश्वत्थ, २ विल्व, ३ वट, ४ धात्री और ५ अशोक—इन्हीं को 'पञ्च-वटी' कहते हैं। इन्हें पाँच दिशाओं में स्थापित करना चाहिए। पूर्व में अश्वत्थ, उत्तर में विल्व, पश्चिम में वट, दक्षिण में धात्री और अग्नि-कोण में अशोक की स्थापना कर इनके मध्य में तपस्या करने हेतु चार हाथ लम्बी-चौड़ी सुन्दर मनोहर वेदी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। पाँच वर्ष तक तपस्या करने से वह अनन्त फल-दायिनी होती है।

वहीं 'वृहत् पञ्च-वटी' का रूप यह बताया है कि मध्य भाग में चारों दिशाओं में चार विल्व-वृक्ष, चारों कोणों में चार वट-वृक्ष, उनके बाहर गोलाकार में पचीस अशोक-वृक्ष, दिशाओं व विदिशाओं में एक-एक आमलक-वृक्ष, फिर चारों दिशाओं में अश्वत्थ-वृक्ष रखे। जो 'पञ्च-वटी' की स्थापना करता है, वह इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् होता है। इस लोक में उसे मन्त्र-सिद्धि मिलती है और पर-लोक में श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। 'हेमाद्रि' के व्रत-खण्ड में भी ऐसे ही वचन हैं।

विल्व-पत्र की महिमा—'मत्स्य-सूक्त', १६ वें पटल में बताया है कि श्रीफल के पत्तों का तत्त्व बड़ा मनोहर और श्रेष्ठ है। तीन जटाओं के समान विल्व के त्रि-पत्र रुद्र-विष्णु-पितामह-स्वरूप हैं। वे ५० तत्त्वों से युक्त सदा चतुर्वर्ग-मय हैं। धर्मार्थ-काम-मोक्ष के देनेवाले हैं। आत्म-तत्व, विद्या-तत्व और पर-तत्व के वे प्रतीक हैं। शिव और शक्ति को पूजा में विल्व, करवीर और अपराजिता के पुष्प अर्पित करने से कोटि गुना फल मिलता है। विल्व के मध्य में ब्रह्मा, मूल में जनार्दन, मध्य में रुद्र और इसके नीचे सभी देवों का वास है। इस प्रकार विल्व-पत्र सब प्रकार से ज्योतिर्मय है।

५ वें पटल में कहा है कि विल्व-पत्र ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है। त्रि-पत्र गुण-त्रयात्मक होने से सर्व-काम-प्रद है।

'योगिनी तन्त्र' में बताया है कि जो शङ्कर और पार्वती को विल्व-पत्र अर्पित करता है, वह सदा-शिव-स्वरूप होकर ब्रह्म-मन्दिर को जाता है।

'चिन्ता-मणि' द्वारा उद्धृत 'त्रि-विक्रम-संहिता' में एक विशेष बात यह बताई है कि मूल को तोड़े बिना जो विल्व-पत्र शङ्कर की पूजा में चढ़ाता है, उसकी वह पूजा निष्फल होती है। मरने पर वह नरक को जाता है। अतः चढ़ाने से पहले विल्व-पत्र के मूल भाग को तोड़कर हटा देना चाहिए।

'मातृका-भेद तन्त्र', १२ वें पटल में कहा है कि एक सहस्र स्वर्ण-पुष्प चढ़ाने का जो फल होता है, उससे लाख गुना अधिक पुण्य एक टूटे हुए विल्व-पत्र के चढ़ाने से मिलता है। 'लिङ्गार्चन-तन्त्र', १२ वें पटल के पूर्वोक्त वचन में कीटादि दोष-वर्जित, कोमल, मधुर, तीन पत्तियों से युक्त विल्व-पत्र के चढ़ाने का जो निर्देश है, वह अधिक फल-प्राप्त्यर्थ है।

रुद्राक्ष की महिमा—'योग-सार', परिच्छेद २ में बताया है कि शिखा में, दोनों हाथों में, कण्ठ में और दोनों कानों में जो भक्ति-पूर्वक रुद्राक्ष धारण करता है, वह शिव-लोक को प्राप्त करता है। बाईं व दाईं भुजा में ६, शिखा में ३२, कण्ठ में २५, कानों में ५-५, हृदय में १०८ और नाभि में ७ रुद्राक्ष धारण करने से मोक्ष मिलता है। रुद्राक्ष धारण करने से देवत्व की प्राप्ति होती है। एक-मुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव-स्वरूप है, ब्रह्म-हत्या जैसे पाप को नष्ट करता है और अग्नि का स्तम्भन करता है। द्वि-मुखी रुद्राक्ष शिव-पार्वती-स्वरूप है, जो गो-वध आदि जैसे पापों का नाश करता है। त्रि-मुखी रुद्राक्ष

अग्नि-स्वरूप है, जो समस्त पापों को जला देता है। चतुर्मुख रुद्राक्ष ब्रह्मा के समान नर-हत्या जसे पापां को, पञ्च-मुखी रुद्राक्ष कालाग्नि के समान अगम्या-गमन जैसे पापों को, छः-मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय के समान गुरु-हत्या जैसे पापों को, सात-मुखी रुद्राक्ष अनन्त के समान स्वर्ण को चोरी जैसे पापों को और अष्ट-मुखी रुद्राक्ष विनायक के समान असत्य जैसे सभी पापों को नष्ट करता है। नौ-मुखी रुद्राक्ष विष्णु के समान भूत-प्रेत-पिशाच का नाशक है। ११-मुखी रुद्राक्ष रुद्र के समान विविध यज्ञों का फल-दायक है। १२-मुखी रुद्राक्ष सूर्य के समान सभी तीर्थों का फल देता है। १३-मुखी रुद्राक्ष कामदेव के समान सभी कामनाओं को पूर्ण करता है। १४-मुखी रुद्राक्ष श्रीकण्ठ के समान वंश का उद्धारक है।

रुद्राक्ष के समान ही इन्द्राक्ष और भद्राक्ष में भी वैसे ही गुण हैं। इनके संस्कार की विधि श्री कृष्णानन्द आगम-वागीश कृत 'तन्त्रसार' में द्रष्टव्य है। एक-मुखी से लेकर चौदह-मुखी तक के रुद्राक्षों के पौराणिक प्रमाण वहाँ भी लिखे हैं। 'पद्म-पुराण, स्कन्द-पुराण' का वहाँ उल्लेख है, जिससे यह सन्देह हो सकता है कि तन्त्र-शास्त्र में रुद्राक्ष-विषयक प्रमाण नहीं हैं। इसी से यहाँ तन्त्रोक्त प्रमाण दिए गए हैं।

सम्विदा का प्रकरण—'समयाचार तन्त्र', पटल १ में बताया है कि 'समया सदा गोपनीया कही गई है। जो विधि-पूर्वक 'समया' का भोग करते हैं, वे पृथ्वी पर नित्य सुख-भोग कर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। 'समया' के बिना पूजा कभी सुफल नहीं देती।'

'आचार-सार', सम्वित् कल्प, पटल ७ में देवी का प्रश्न है कि 'योगियों को सदा किसका सेवन करना चाहिए ? कौलों को बल और पुष्टि-दायक कौन है ? मन की चञ्चलता किसके द्वारा दूर होती है और समाधि को प्राप्त करानेवाला कौन है ?' इन प्रश्नों के उत्तर में बलासुर और इन्द्र की कथा सुनाकर भगवान् शिव 'त्रैलोक्य-विजया' के २१ नाम बताते हैं। यथा—

१ त्रैलोक्य-विजया, २ सिद्धा, ३ सिद्धि, ४ सिद्धि-मूलिका, ५ ज्ञान, ६ सम्वित्, ७ सम्विदा, ८ श्यामा, ९ भङ्गा, १० रसायना, ११ योगदा, १२ योगिनी-सेव्या, १३ योग-मार्ग-प्रकाशनी, १४ ब्रह्माणी, १५ ब्रह्म-सम्भूता, १६ ब्रह्मानन्द-प्रदायिनी, १७ वाग्-देवता-वश-करी, १८ विजया, १९ विजय-प्रदा, २० समाधि-वरदा, २१ अज्ञान-नाशिनी।

श्वेत-पुष्पा ब्राह्मणी, रक्त-पुष्पा क्षत्रिया, पीत-पुष्पा वैश्या और कृष्ण-पुष्पा शूद्रा—इस प्रकार चार भेद 'विजया' (संविदा, समया) के होते हैं। बीज-सहित इनकी पत्तियों को लेकर घी में भूने, फिर सिल पर पीस कर उनका चूर्ण बनाए। १ त्रि-कटु, २ त्रि-फला, ३ शृङ्गी, ४ कूट, ५ धनिया, ६ सेंधा नमक ७ सुण्ठी (शची), ८ तालीस-पत्र, ९ कटुकी, १० नाग-केसर, ११ यवानी-द्वय, १२ मेथी, १३ काला व सफेद जीरा—इन औषधियों को बराबर मात्रा में लेकर सुखाकर विजया-चूर्ण में मिलाकर चूर्ण बनाए। इस चूर्ण को स्वर्ण आदि के किसी विहित पात्र में रखे। उस पात्र के ऊपर हाथ रखकर क्रमशः चार मन्त्रों से उसका शोधन करे। यथा—

(१) ॐ सम्विदे, ब्रह्म-सम्भूते, ब्रह्म-पुत्रि, सदाऽनघे ! भैरवानां च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा। ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा।

(२) सिद्धि-मूल-क्रिये देवि, हीन-बोध-प्रबोधिनि ! राजा-प्रजा-वशङ्करि, शत्रु-कण्ठ-त्रिशूलिनि ! ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा।

(३) ॐ अज्ञानेन्धन-दीप्ताग्ने, ज्वालाग्ने, ज्ञान-रूपिणि ! आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं सम्यक् ज्ञानं प्रयच्छ मे। ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा।

(४) ॐ नमस्यामि नमस्यामि योग-मार्ग - प्रदर्शिनि ! त्रैलोक्य-विजये, मातः ! समाधि-फलदा भव । क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा ।

'महा-निर्वाण तन्त्र', ५ वें उल्लास में बताया है कि वीरासन बाँधकर साधक विजया का शोधन करे । 'मुण्ड-माला तन्त्र' में शोधन-मन्त्र का विनियोग दिया है । यथा—

ॐ अस्य श्रीवाग्वादिनी-मन्त्रस्य ब्रह्मर्षिः, गायत्री छन्दो, वाग्वादिनी देवता, ऐं बीजं, क्लीं कीलकं, सौः शक्तिः, वाग्वादिनी-प्रीत्यर्थं मम सिद्धये जपे विनियोगः ।

अङ्गन्यास, कर-न्यास यथा-विधि कर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक 'संविदा'-चूर्ण की स्तुति करे । गुरु-मुख से प्राप्त मन्त्र को साधक नित्य जपता है । उसी विधि से 'समया' को सात बार अभि-मन्त्रित कर उसे गुरु, शिव और देवी को अर्पित कर स्वयं खाये ।

'महा-निर्वाण तन्त्र' में सम्विदा-शोधन का मन्त्र—ॐ ह्रीं अमृते, अमृतोद्भवे, अमृताकर्षिणि ! अमृतमाकर्षयाकर्षय, सिद्धिं देहि अमुकं मे वशमानय स्वाहा । फिर 'विजया' के ऊपर सात बार मूल-मन्त्र का जप कर आवाहनी आदि मुद्रायें और धेनु-मुद्रा दिखाये । सहस्रार-पद्म में सङ्केत-मुद्रा से गुरु का तीन बार तर्पण कर मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए तीन ही बार हृदय में देवी का तर्पण करे । तब निम्न मन्त्र से कुण्डली-मुख में स्वयं ग्रहण करे—'ऐं वद वद क्रीं वाग्-वादिनि ! मम जिह्वाग्रे स्थिरी-भव सर्व-सत्व-वशङ्करि ! स्वाहा ।' अथवा तत्व-मुद्रा से इष्ट-मन्त्र का सात बार-जप कर निम्न मन्त्र से परमेश्वर का ध्यान करते हुए विजया का पान या भक्षण करे—ॐ जय जय, विजय विजय, पर-ब्रह्म-स्वरूपिणि ! सर्व-जनं मे वशमानय हुं फट् स्वाहा ।'

'आचार-सार' में चारों प्रकार की विजया के शोधन का मन्त्र यह बताया है—'ॐ अमृते, अमृतोद्भवे, अमृत-वर्षिणि ! अमृतमाकर्षयाकर्षय, सिद्धिं देहि, अमुकं मे वशमानय स्वाहा ।' फिर उसमें आनन्द-भैरव और आनन्द-भैरवी का मन्त्र जपे । छोटिका-मुद्रा से तीन बार ताली बजाकर और दिव्य दृष्टि से देखकर दिग्-बन्धन करे । तब तीन बार एड़ी से ठोकर मारकर विघ्नों का नाश करे । ब्रह्म-रन्ध्र के सहस्रार-पद्म में सात, तीन या एक बार मन्त्र जपता हुआ अपने गुरु, परम गुरु, परापर गुरु का तर्पण करे । वहीं आनन्द-भैरव और आनन्द-भैरवी का तर्पण करे । हृदय में मूल-मन्त्र से तत्व-मुद्रा द्वारा इष्ट-देवी का तर्पण करे । फिर तिल या मूंग के बराबर 'सम्विदा' लेकर निम्न मन्त्र को तीन या एक बार जपता हुआ अपने मुख में ग्रहण करे—'ॐ ऐं ऐं वद वद वाग्-वादिनि ! मम जिह्वाग्रे स्थिरी-भव सर्व-सत्व-वशङ्करि ! स्वाहा ।'

समया स्तोत्र

समयाचार-तन्त्रे, प्रथम-पटले—

ॐ सम्विदे, ब्रह्म-सम्भूते, ब्रह्म-पुत्रि, सदानघे ! भैरवानां तु तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा ।
नृणां च जननी नाथावेशालंकृत-मण्डला । भव-सन्ताप - निर्वापः सु-धियां त्वं महा-निधिः ।।
ॐ सिद्धि-मूली-क्रिये, देवि, हीन-बोध-प्रबोधिनि ! राज-प्रजा-वशङ्करि, शत्रु-कण्ठ-त्रिशूलिनि !
ॐ अज्ञानेन्धन-दीप्ताग्नेर्ज्वालाग्नेर्ज्ञान-रूपिणि ! आनन्दस्याहुतिं मत्वा सम्यक् ज्ञानं प्रयच्छ मे ।

इस प्रकार 'आनन्द-मयी विजया' की स्तुति कर उसका ध्यान कर 'विजया आनन्द-स्तव' का पाठ करे । यथा—

आनन्द-मयी-ध्यानं--

दण्डाधि - रूढ़- पूरि त-मोक्ष - भोगामिन्दु-प्रसन्न - वदनां जय-दान-शीलां ।
आराधयामि बहु-शत्रु-पराजयित्रीं, विश्वेश्वरीं त्रि-भुवने विजयेति देवीं ।
आनन्द-नन्दनीं वन्दे सदानन्द-पद-द्वये । आनन्द-कदलीं वन्दे स्वच्छन्द - बोध-रूपिणीं ।
कलयति कवितां महतीं कुरुते स्वार्थ-दर्शनं पुंसां । अप-हरति दुरित-निलयं किं किं न करोति सम्विदुल्लासः।
सम्विदासवयोर्मध्ये सम्विदेव गरीयसी । भक्षिता भव-नाशाय निर्गन्धा बोध - रूपिणी ।
सु-सम्वित् शूलिनी देवी विजया सम्विदांकुरा । वैष्णवी तुलसी तुङ्गा तेजो-रश्मी-रसेश्वरी ।
विमर्षा श्वेत-वद् वैद्या लक्ष्मी-देवी महोदरी । समया मोहिनी चैव सिद्ध-मूली महोदरी ।
मातुलानी सिद्धि-रूपा सिद्धि-दात्री सरस्वती । वाग्-वादिनी सदा नित्या आनन्द-पद-दायिनी ।
यानि चैतानि नामानि सेवयेत् सिद्धि-मूलिकां । समाप्नोति परां विद्यां भुक्ति मुक्ति च विन्दति ।
पाण्डित्यं च कवित्वं च मन्त्र सिद्धि च विन्दति ।। इति विजया-स्तोत्रम् ।।

विजया-भक्षण का फल—'आचार-सार' में बताया है कि दूध, जल, घृत, माध्वीक, सैन्धव नमक, चीनी, गुड़, या पके केले अथवा पके आम आदि के मधुर रस के साथ 'विजया' सभी साधकों को स्वीकार करनी चाहिए। दूध के साथ वह आनन्द बढ़ाती है, तेज-वान् बनाती है और आँखों के दोषों को दूर करती है। जल के साथ वह सभी प्रकार के अजीर्ण को नष्ट करती है। घी के साथ मेधा को बढ़ाकर वाक्-शक्ति को तीव्र करती है। मधु के साथ सभी शारीरिक दोषों का नाश करती है। सेंधा नमक के साथ जठराग्नि को तीव्र कर पाचन-शक्ति बढ़ाती है। चीनी या गुड़ के साथ शूल, अम्ल-पित्त, अतीसार, श्वास-कास, आम-वात से होनेवाली संग्रहणी नष्ट करती है। उक्त सभी अनुपानों या केवल मधु के साथ विजया समस्त रोगों का नाश कर बल और पुष्टि देती है, स्वर को मधुर बनाती है, ज्ञान-विज्ञान और चातुर्य का विकास करती है।

'विजया' वास्तव में चित्-स्वरूपिणी है। कहा है कि 'सम्विदा' और 'आसव' में से 'सम्विदा' ही श्रेष्ठ है। अतः उत्तम साधकों को इस संसार में सम्विदा का ही सेवन करना चाहिए।

सम्विदा-भक्षण का काल और मात्रा—एक, दो, तीन या पाँच समय 'विजया' का भक्षण करना चाहिए। एक तोला, आधा तोला या दो तोला एक बार में लेना चाहिए। न्यूनाधिक मात्रा का फल वैसा ही होता है। अतः सिद्धि की कामना रखनेवाले को मात्रा का ध्यान रखना चाहिए।

'समयाचार तन्त्र' में लिखा है कि ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर भक्ति-पूर्वक लेने से विजया पापों का नाश करती है। सूर्योदय होने पर, मध्याह्न के समय और अपराह्न के समय में विधि-पूर्वक लेने से विजया सभी कामनाओं को पूर्ण करती है। अर्ध-रात्रि के समय लेने से वह विशेष रूप से वाञ्छित फल प्रदान करती है। 'समया' (विजया) के बिना पूजा सिद्धि नहीं देती, वह व्यर्थ ही होती है।

'विजया' से अपमृत्यु का निवारण होता है, रोग-शोक का नाश होता है, दुष्टों और शत्रुओं का शमन होता है और सभी लोक प्रसन्न होते हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक सभी पाप नष्ट होकर विजया-सेवन से साधक शिव-स्वरूप बनता है। 'समया' का भक्षण कर साधक जो भी मन्त्र-जप करता है, उसका पूरा फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं। 'समया' (विजया) के बिना जप करनेवाला अल्पायु होता है और देवता उस पर कुपित होती है।

'कुब्जिका तन्त्र', ७ वें पटल में कहा है कि 'समया' (विजया) के बिना साधक सिद्ध नहीं होता। अतः उसे प्रयत्न करके ग्रहण करना चाहिए।

चौथा परिच्छेद

शाल-ग्राम का प्रकरण

शाल-ग्राम की उत्पत्ति—'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत कार्तिक-माहात्म्य में बताया है कि वेद-शिरा नामक मुनि ने गङ्गा किनारे बड़ी उग्र तपस्या की। उनके तप से डर कर इन्द्र ने मञ्जु-वाक् नाम की किसी देव-कन्या को उनकी तपस्या में विघ्न डालने को भेजा। उसने जब मुनि की तपस्या भङ्ग करने का प्रयत्न किया, तब उससे रुष्ट होकर मुनि ने उसे शाप दिया कि 'तू नदी हो जा।' इस पर वह बड़ी रोई-धोई और मुनि से क्षमा माँगी। तब मुनि ने कहा कि 'तुम नदी अवश्य बनोगी किन्तु अपने उदर में जनार्दन को धारण कर तुम लोगों को कृतार्थ करो। जनार्दन शिला के रूप में तुम्हारे भीतर उत्पन्न हगे, जिससे तुम्हारा यश फैलेगा और मनुष्यों को इस संसार से मुक्ति मिलेगी।' वही मञ्जु-वाक् देवी श्रेष्ठ नदी '**गण्डकी**' है। मुनि के शाप से उसी में शिला-रूपी विष्णु मिलते हैं।

'स्कन्द-पुराण' में गण्डको की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने गण्डकी को दर्शन दिए और यह वरदान दिया कि 'हे देवि! मैं तुम्हारे गर्भ में शाल-ग्राम-शिला के रूप में सदा रहूँगा। मेरे सान्निध्य से तुम अति-श्रेष्ठा बन जाओगी। तुम्हारा दर्शन करने से, तुम्हें स्पर्श करने से, तुममें स्नान करने से और तुम्हारे जल का पान करने से लोगों के मनसा, वाचा, कर्मणा किए गए सभी बड़े-से-बड़े पाप भी नष्ट हो जायँगे।'

'वराह पुराण' में वराह ने पृथ्वी से गण्डकी आदि नदियों में प्राप्य सोमेशादि लिङ्गों की प्रशंसा करते हुये शाल-ग्राम का उल्लेख किया है और बताया है कि सालङ्कायन मुनि ने शाल-ग्राम तीर्थ में श्रेष्ठ तपस्या की है।

'विष्णु-धर्मोत्तर' आदि में वर्णित है कि सालङ्कायन मुनि ने दीर्घ-काल तक तपस्या करने के बाद उत्तम साल-वृक्ष को देखा जो विशाल छायावाला और पुष्पों से विभूषित था। उसी साल-वृक्ष के पूर्वी पार्श्व-भाग में मुनि को भगवान् के दर्शन हुये और उन्होंने उनकी स्तुति की। इसी प्रकार पवित्र गण्डकी नदी में शिला-रूप में भगवान् प्रकट हुये।

इस प्रकार 'शिला' और 'साल' के प्रसङ्ग से 'शाल-ग्राम' तथा 'साल-ग्राम' दोनों नाम प्रसिद्ध हुए हैं।

'ब्रह्म-वैवर्त्त', प्रकृति-खण्ड, १९वें अध्याय में कहा है कि गण्डकी के किनारे शैल-रूप में भगवान् का वास होगा। उस शिला में वज्र-कीट आदि कीड़ों के तीव्र दाँतों द्वारा चक्र बने होंगे। इस प्रकार शाल-ग्राम शिला चक्र-युक्त होगी।

शाल-ग्राम शिला के शुभाशुभ लक्षण—'गौतमीय' के अनुसार बिना किसी प्रयत्न के अनायास ही यदि शालग्राम शिला मिल जाय, तो पानेवाला बड़ा भाग्यशाली होता है।

'स्कन्द-पुराण' में बताया है कि शाल-ग्राम शिला विविध रङ्गों की, चिकनी या खुरदुरी, चक्रों से युक्त या रहित, अनेक-मुखी या अधोमुखी—कई प्रकार की मिलती है। अपने रूप और लक्षणों के अनुरूप ही वह शुभाशुभ फल देती है। उदाहरण के लिए चिकनी शिला सिद्धि-दात्री होती है। काली शिला यश-दायिनी है। इसी प्रकार पाण्डुरा पाप-नाशिनी, पीली पुत्र-प्रदा, नीली धन-दायिनी और लाल रोगदा

होती है। रूखी शिला उद्वेग उत्पन्न करती है और टेढ़ी-मेढ़ी शिला से दरिद्रता आती है। नीली शिला आयु-नाशक है और चिह्न-रहिता शिला से कोई फल नहीं मिलता।

'प्रकृति-खण्ड' के अनुसार छत्राकार शिला से राज्यैश्वर्य मिलता है। शकटाकारा दुःख देती है। विकृति मुखवाली दरिद्र बनाती है और पिङ्गला से हानि होती है। टूटे हुए चक्र से युक्त शिला रोग-प्रदा होती है।

'मत्स्य-सूक्त' में लिखा है कि तिकोनी, बेढंगी, छेदोंवाली, टूटी-फूटी और अर्द्ध-चन्द्राकार शिला पूजा के योग्य नहीं है। ऐसी शिला की पूजा करने से कोई लाभ नहीं होता, उल्टे हानि ही होती है।

'अग्नि-पुराण' के अनुसार आँवले के फल बराबर और श्याम-वर्णा, चिकनी तथा समान चक्र से युक्त शिला शुभ है। उसकी पूजा करने से इस लोक में सुख मिलता है और परलोक में सद्-गति होती है।

'ब्रह्म-पुराण' में जो यह कहा है कि खण्डित, टूटी-फूटी या बगल में चिटकी कैसी भी शाल-ग्राम शिला हो, वह कुछ भी दोष नहीं करती, यह इष्ट-चक्र के प्रति महिमा-परक मात्र है। 'स्कन्द-पुराण' में भी रुद्र का ऐसा ही कथन है कि खण्डित या स्फुटित शाल-ग्राम जिनकी इष्ट-मूर्ति है, वह उसी की यत्न-पूर्वक पूजा करे, उसे कोई दोष नहीं होगा। वस्तुतः ऐसी शिला में सकाम-पूजा से दोष होता है, ऐसा 'भगवद्-भक्ति-विलास' और 'वीर-मित्रोदय' में प्रतिपादन किया गया है। इष्ट-मूर्ति की पूजा में कोई दोष नहीं होता।

'स्कन्द-पुराण' में भी कहा है कि शुभ लक्षणवाली शिला के अभाव में निन्द्य लक्षणवाली शिला की पूजा करने में कोई दोष नहीं है।

शाल-ग्राम-पूजा का फल—'पद्म-पुराण', माघ-माहात्म्य में बताया है कि शाल-ग्राम में विष्णु की पूजा करने से एक सहस्र राजसूय-यज्ञ का फल मिलता है। वेदान्ती लोग निर्गुण अच्युत ब्रह्म का नमन करने से जो पुण्य प्राप्त करते हैं, वही पुण्य शाल-ग्राम शिला की पूजा करनेवाले को मिलता है। पाप करनेवाले और सत्कर्म के अनधिकारी वैश्य लोग शाल-ग्राम की पूजा करने के फल-स्वरूप यम-लोक जाने से बच जाते हैं। शाल-ग्राम शिला के चक्र में विष्णु की पूजा करनेवाला अग्नि-होत्र और सागर तक विस्तृत पृथ्वी का दान करने का पुण्य प्राप्त कर लेता है। तीर्थ-यात्रा और यज्ञादि किए बिना तथा दान दिए बिना ही वैश्य-जन शाल-ग्राम शिला के पूजन के फल-स्वरूप मोक्ष पा जाते हैं।

शाल-ग्राम से युक्त प्रदेश की महिमा—महा-तन्त्र 'मत्स्य-सूक्त', उपरि-भाग, प्रथम चरण के १२ वें पटल में कहा है कि गण्डकी नदी से १२ कोस तक का क्षेत्र तपोवन-जैसा होता है। अतः चक्राङ्कित शिला का वहाँ पूजन करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है।

सुदर्शन आदि चक्रों के लक्षण—एक चक्रवाली शिला 'सुदर्शन' है, जो लक्ष्मी-नारायण-स्वरूपा है। दो चक्रों से युक्त 'अच्युत', चार चक्रोंवाली 'चतुर्भुज,जनार्दन', पाँच चक्रों वाली 'वासदेव' कहलाती है। सात चक्र-वाली शिला 'शुभदा', बारह चक्रोंवाली 'शुभा' होती है। ग्यारह चक्रों से 'अनिरुद्ध', बारह से 'अर्क', तीन से 'अग्नि' कहा जाती है। द्वि-चक्रा शिला में पार्वती का स्मरण होता है। चार चक्रों से 'चतुर्मुख' का, पाँच से 'महा-देव' का और छः से 'षडानन' का ध्यान होता है।

शाल-ग्राम की उत्पत्ति का स्थान—गण्डकी में शाल-ग्राम शिला पश्चिम से लेकर भुवन-पर्वत तक सोलह रूपों में उत्पन्न होती है। यथा—१ प्रद्युम्न, २ वामन ३ वराह, ४ पुरुषोत्तम, ५ नारायण

६ नृ-हरि, ७ अनन्त, ८ जनार्दन, ९ वासुदेव, १० मत्स्य, ११ कूर्म, १२ बौद्ध, १३ कल्कि, १४ विश्व-केश, १५ हय-ग्रीव, १६ श्री-कर। इनके अतिरिक्त हरि-हर और लक्ष्मी-नारायण सभी क्षेत्रों में उत्पन्न होते हैं।

शाल-ग्राम शिला के समीप मृत्यु का फल—'स्कन्द-पुराण' में कहा है कि अपवित्र म्लेच्छ देश में भी जहाँ कहीं चक्राङ्कित शिला होती है, वहाँ तीन योजन तक का क्षेत्र पवित्र होता है। उसके मध्य जिस उपासक को मृत्यु होती है, वह समस्त बाधाओं से छूटकर मुक्त हो जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

शाल-ग्राम-क्षेत्र में स्नान-दानादि का फल—चक्राङ्कित शिला के समीप स्नान, दान, तप, होम आदि जो भी कर्म किए जाते हैं, उन सबका अक्षय फल होता है।

शाल-ग्राम के दान का फल और मत्स्यादि-मूर्तियाँ—साल भर में जो भी पाप मनसा या कर्मणा होते हैं, वे सब एक बार चक्राङ्कित शिला का दान देने से नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्म-पुराण, पद्म-पुराण, ब्रह्माण्ड-पुराण, पुराण-संग्रह, मत्स्य-सूक्त, वीर-मित्रोदय, वैश्वानर-संहिता, अग्नि-पुराण ग्रन्थों के आधार पर मूल ग्रन्थ में विविध शाल-ग्राम-शिलाओं के नाम और लक्षण वर्णित हैं। यहाँ सारांश-रूप में केवल नामों का उल्लेख किया जाता है—

१ मत्स्य, २ कूर्म, ३ वराह, ४ नृसिंह, ५ वामन, ६ परशुराम, ७ राम, ८ सङ्कर्षण, ९ ब्रह्म (बुद्ध), १० कल्कि, ११ कृष्ण।

स्पष्टतः ये भगवान् विष्णु के अवतारों के सूचक नाम हैं। इनमें से अनेक के भेदों को लेकर उनके नाम से भी शिला-नामकरण मिलते हैं। यथा—

नृसिंह के अन्तर्गत १ कपिल-नृसिंह, २ लक्ष्मी-नृसिंह, ३ विदारण, विदार या योग-नृसिंह, ४ सर्वतोमुख नृसिंह, ५ पाताल-नृसिंह, ६ आकाश-नृसिंह, ७ राक्षस-नृसिंह, ८ जिह्वा-नृसिंह, ९ अधोमुख नृसिंह, १० ज्वाला-नृसिंह।

वामन के अन्तर्गत १ कामद वामन, २ दधि-वामन आदि।

राम के अन्तर्गत १ रण-राम, २ राज-राजेश्वर, ३ सीता-राम, ४ दश-कण्ठ-कुलान्तक राम, ५ वीर राम, ६ विजय राम, ७ कवित्व-दातृ राम, ८ दुष्ट राम।

सङ्कर्षण के अन्तर्गत १ बलभद्र, २ बलराम, ३ सङ्कर्षण।

कृष्ण के अन्तर्गत १ गोपाल, २ मदन-गोपाल, ३ सन्तान-गोपाल, ४ गोवर्द्धन-गोपाल, ५ लक्ष्मी-गोपाल, ६ कालीय-मर्दन, ७ स्यमन्त-हारि, ८ चाणर-मर्दन, ९ कंस-मर्दन।

उक्त अवतार-परक नामों के अतिरिक्त भगवान् विष्णु के अन्य प्रसिद्ध रूपों के आधार पर भी शाल-ग्राम शिलाओं के नाम मिलते हैं। यथा—

१ केशव, २ हयग्रीव, ३ परमेष्ठि, ४ हिरण्य-गर्भ, ५ चतुर्भुज, ६ गदा-धर, ७ नारायण, ८ लक्ष्मी-नारायण, ९ नर-नारायण, १० रूपि-नारायण, ११ माधव, १२ गोविन्द, १३ विष्णु, १४ त्रि-विक्रम, १५ श्री-धर, १६ पद्म-नाभ, १७ दामोदर, १८ सुदर्शन, १९ प्रद्युम्न, २० अनिरुद्ध, २१ पुरुषोत्तम, २२ अधोक्षज, २३ अच्युत, २४ उपेन्द्र, २५ जनार्दन, २६ हरि, २७ अनन्त, २८ योगेश्वर, २९ पुण्डरीकाक्ष, ३० चतुर्मुख, ३१ यज्ञ-मूर्ति, ३२ दत्तात्रेय, ३३ शिशु-मार, ३४ हंस-मूर्ति, ३५ परम-हंस, ३६ लक्ष्मी-पति,

३७ गरुड़-ध्वज, ३८ वट-पत्र-शायि, ३९ विश्वम्भर, ४० विश्व-रूप, ४१ पीताम्बर, ४२ सप्त-वीर-श्रव, ४३ चक्र-पाणि, ४४ बहु-रूपि, ४५ जगद्-योनि, ४६ हरि-हर, ४७ शिव-नारायण, ४८ स्वयम्भू, ४९ शङ्कर-नारायण, ५० पितामह, ५१ नर-मूर्ति, ५२ शेष-मूर्ति, ५३ सूर्य, ५४ हैहय, ५५ विष्णु-पञ्जर, ५६ गरुड़ इत्यादि।

इन सब शाल-ग्राम-शिला-भेदों के लक्षण मूल में द्रष्टव्य हैं। लक्षणों के सम्बन्ध में यहाँ इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त है कि शिला में अङ्कित चक्रों, रेखाओं और उनकी आकृतियों तथा रङ्गों के आधार पर उक्त नामों का आरोपण किया गया है।

'पद्म-पुराण' में भगवान् विष्णु का कथन है कि मैं शाल-ग्राम के गृह में सदा निवास करता हूँ। वर्ण और चक्र के भेद से मेरे नाम होते हैं।

शाल-ग्राम के भेद—'ब्रह्माण्ड-पुराण' में बताया है कि दो प्रकार की मूर्ति होती है—१ जलजा, २ स्थलजा। जलजा मूर्ति कोमल और स्निग्ध तथा स्थलजा मूर्ति कठोर होती है। 'पद्म-पुराण' में कहा है कि लक्षणों से युक्त शाल-ग्राम-शिलाओं में भी जो सूक्ष्म होती हैं, वे अधिक फल-दायक होती हैं। अतः धर्म-कर्मार्थ की सिद्धि के लिए अधिक-से-अधिक सूक्ष्म शिला का ही नित्य पूजन करना चाहिये। आँवले के समान जो अति सूक्ष्म शिला होती है, उसमें लक्ष्मी-सहित विष्णु का वास रहता है।

वर्ण-भेद से पूजनीया शिला—'हेमाद्रि' में ब्राह्मणों के लिए 'वासुदेव', क्षत्रियों के लिए 'सङ्कर्षण', वैश्यों के लिए 'प्रद्युम्न' और शूद्रों के लिए 'अनिरुद्ध' शिला पूजनीया बताई है। ब्राह्मण चारों की पूजा कर सकते हैं, क्षत्रिय तीन की, वैश्य दो की और शूद्र केवल एक की।

वृद्ध गौतम ने विशेष बात कही है कि २४ शिलाओं का पूजन सभी लोग कर सकते हैं। इनके पूजन में वर्ण या जाति या लिङ्ग का कोई विचार नहीं है। ये हैं—१ लक्ष्मी-नारायण, २ अनन्त, ३ नृसिंह, ४ राम, ५ केशव, ६ हिरण्य-गर्भ, ७ प्रद्युम्न, ८ गोपाल, ९ गरुड़-ध्वज, १० राम, ११ अनिरुद्ध, १२ चक्रास्य, १३ दामोदर, १४ गदाधर, १५ चतुर्भुज, १६ महा-नील, १७ मुकुन्द, १८ पुरुषोत्तम, १९ पीताम्बर-हरि, २० ब्रह्मा, २१ कृष्ण, २२ श्रीधर, २३ माधव, २४ वासुदेव।

ब्राह्मणों के लिए गण्डकी नदी से उत्पन्न चार शाल-ग्राम शिलायें विशेष प्रशस्त हैं—१ लक्ष्मी-नारायण, २ अनन्त, ३ हिरण्य-गर्भ और ४ पुरुषोत्तम। क्षत्रियों के लिए प्रशस्त शिलायें हैं—१ लक्ष्मी-नारायण, २ अनन्त, ३ कृष्ण, ४ अनिरुद्ध, ५ गरुड़-ध्वज, ६ गोपाल, ७ राम, ८ श्रीधर। वैश्यों के लिए—१ वासुदेव, २ प्रद्युम्न, ३ दामोदर, ४ गदाधर, ५ पीताम्बर, ६ हरि, ७ लक्ष्मी-नारायण प्रशस्त हैं। शूद्रों को १ माधव, २ हरि, ३ लक्ष्मी-नारायण, ४ अच्युत, ५ अनिरुद्ध, ६ केशव, ७ पीताम्बर प्रशस्त हैं। उक्त २४ मूर्तियों में शेष १ नृसिंह, २ चक्रास्य, ३ महा-नील, ४ मुकुन्द यतियों के पूजन के लिए प्रशस्त हैं।

'स्कन्द-पुराण' के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को यथा-विधि शाल-ग्राम की पूजा का अधिकार प्राप्त है। स्त्रियाँ भी किसी वर्ण की हों, शिला-चक्र की पूजा कर शाश्वत पद को प्राप्त करती हैं। ब्राह्मणों को नित्य पूजन करना चाहिए, क्षत्रियादि को नहीं।

'विष्णु-धर्मोत्तर' और 'पद्म-पुराणादि' में लिखा है कि प्रणव (ॐ) का उच्चारण करने से, होम करने से, शाल-ग्राम शिला का पूजन करने से और ब्राह्मणों के सङ्गम से शूद्र चाण्डाल बन जाता है। इस प्रकार के वचनों से क्षत्रिय आदि को शाल-ग्राम शिला के पूजन का निषेध ज्ञात होता है। ऐसो

दशा में पूर्वोक्त वचनों के अनुसार वे कैसे पूजन करें ? इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों को शाल-ग्राम शिला के पूजन का अधिकार है। स्त्रियों, शूद्रों, पतितों, षण्डों और कुकर्मियों को उसकी पूजा का अधिकार नहीं है। विष्णु-भक्त वैष्णवों के ही, जो गो और ब्राह्मण के हित में लगे रहते हैं, शाल-ग्राम-शिला-चक्र की सदा पूजा करनी चाहिए।

'लिङ्ग-पुराण' में भगवान् का वचन है कि पवित्र या अपवित्र ब्राह्मण द्वारा ही मेरी पूजा हो सकती है। स्त्री और शूद्र के हाथों का स्पर्श मेरे लिए वज्र-पात से भी अधिक कष्ट-दायक है। इस वचन से यह स्पष्ट होता है कि केवल ब्राह्मण को ही शाल-ग्राम शिला का स्पर्श करते हुए पूजन करने का अधिकार है। क्षत्रिय आदि के लिए मात्र 'स्पर्श' का निषेध है। अतः जहाँ यह कथन है कि क्षत्रियादि को शाल-ग्राम की पूजा करनी चाहिए, उसका आशय यह है कि उन्हें स्पर्श-रहित पूजा करनी है।

'वृहन्नारदीय' में लिखा है कि स्त्रियों और शूद्रों को विष्णु या शङ्कर की मूर्ति का स्पर्श नहीं करना चाहिए। यदि वे स्पर्श करेंगे, तो नरक को प्राप्त होंगे। अतः शूद्रों को ब्राह्मण के द्वारा शाल-ग्राम का पूजन कराना चाहिए।

'पद्म-पुराण' और 'पुराण-संग्रह' में लिखा है कि मद्य-पान न करनेवाले और दीक्षा-प्राप्त शूद्रों को ब्राह्मण द्वारा शाल-ग्राम-शिला का अर्चन करना चाहिए।

दो शाल-ग्रामों आदि के पूजन का निषेध—'वराह-पुराण' के अनुसार घर में दो शिव-लिङ्गों और दो शाल-ग्रामों के पूजन का निषेध है। इसी प्रकार द्वारका-शिला में दो चक्रों और दो सूर्यों की पूजा न करनी चाहिए। तीन शक्तियों और तीन गणेशों की भी पूजा निषिद्ध है। दो शङ्खों का और टूटी हुई प्रतिमा का भी पूजन नहीं करना चाहिए। मत्स्यादि के दाँतों से कटे हुए शङ्ख की पूजा मना है। घर में अग्नि से जली हुई या खण्डित प्रतिमा की पूजा का निषेध है। इन सबकी पूजा से गृहस्थ को सुख नहीं मिलता। सम-संख्या में ही शाल-ग्राम पूजनीय हैं, विषम संख्या में नहीं। सम-संख्या में 'दो' का और विषम-संख्या में 'एक' का निषेध है।

बारह शाल-ग्रामों की पूजा का फल—'पद्म-पुराण' में लिखा है कि शाल-ग्रामों से उत्पन्न बारह शिलाओं की विधि-वत् पूजा करने से कोटि द्वादश लिङ्गों का स्वर्ण-पुष्पों से पूजन करने का पुण्य मिलता है। आठ दिनों तक काशी-वास का जो पुण्य होता है, वह केवल एक दिन के पूजन करनेवाले को मिल जाता है। सौ शाल-ग्राम-शिलाओं का भक्ति-पूर्वक पूजन करनेवाला इस संसार में चक्रवर्ती सम्राट् जैसा यशस्वी होता है और महर्लोक को प्राप्त करता है।

शाल-ग्राम बेचने की निन्दा—'पद्म-पुराण' के अनुसार जो शाल-ग्राम शिला का मूल्य लेता है, वह विक्रेता और उसका सहायक नाश को प्राप्त करते हैं। वे बड़े पापी होते हैं और सदैव दुखी रहकर अन्त में नरक को प्राप्त करते हैं। अन्य चक्रों के सम्बन्ध में 'मेरु-तन्त्र' आदि द्रष्टव्य हैं।

तुलसी-दल द्वारा शाल-ग्राम-पूजा का फल—'काशी-खण्ड' में ध्रुव का वचन है कि जो तुलसी-दलों से शाल-ग्राम शिला की पूजा करते हैं, उन्हें देव-लोक की रमणियाँ पारिजात-पुष्पों की माला से सम्मानित करती हैं।

शाल-ग्राम और द्वारका-चक्र के एकत्र रहने का फल—'स्कन्द-पुराण' के अनुसार शाल-ग्राम और द्वारावती से उत्पन्न चक्रों का जहाँ सङ्गम होता है, वहाँ उपासना करनेवाला निश्चित रूप से मुक्ति-लाभ करता है।

पाँचवाँ परिच्छेद

विष्णु-पूजादि का कथन

द्वारिका-शिला के भेद व लक्षण—स्कन्द-पुराण, पुराण - सार (द्वारका-कार्तिक-माहात्म्य), ब्रह्माण्ड-पुराण, नृसिंह पुराण, पद्म-पुराण, योग-पारिजात आदि के आधार पर द्वारिका-शिला के अनेक भेद और उनके लक्षण मूल-ग्रन्थ में वर्णित हैं। जिज्ञासु पाठक वहाँ देख सकते हैं। यहाँ सारांश-रूप में यह उल्लेखनीय है कि शाल-ग्राम शिला के समान ही विविध प्रकार की द्वारिका-शिलाओं के भी विभिन्न नाम हैं। यथा—१ श्री-धर, २ अघोर, ३ शिव-नाभि, ४ सद्योजात, ५ वाम-देव, ६ ईशान, ७ तत्पुरुष, ८ सदा-शिव आदि।

इन शिलाओं के लक्षण व इनकी पूजा का फल भी वहीं विस्तार से वर्णित है।

शाल-ग्राम की पूजा-विधि—'पुरुष-सूक्त' के एक, दो या तीन मन्त्रों द्वारा शङ्खस्थ जल से या किसी अन्य पात्रस्थ जल से शाल-ग्राम को स्नान कराना चाहिए। फिर नवीन वस्त्र से दोनों हाथों द्वारा जल को पोंछ-सुखा कर उस पर चन्दन-सहित तुलसी-पत्र रखे। तब उसे ताम्र-पात्रादि में स्थापित कर सामान्यार्घ्य की स्थापना करे। इसके बाद गणेश, आदित्यादि-नव-ग्रहों, इन्द्रादि दश दिक्-पालों को पूजा कर **'नां हृदयाय नमः'** इत्यादि से अङ्ग-न्यास और कर न्यास करे।

शाल-ग्राम के चारों ओर पूर्व से लेकर ईशान तक क्रमशः निम्न आठ मन्त्रों से पूजा करे—

ॐ कर्त्रे नमः ।। १ ॐ हर्त्रे नमः ।। २ ॐ धात्रे नमः ।। ३ ॐ विधात्रे नमः ।। ४ ॐ साम-वेदाय नमः ।। ५ ॐ यजुर्वेदाय नमः ।। ६ ॐ ऋग्वेदाय नमः ।। ७ ॐ अथर्व-वेदाय नमः ।। ८

तब हाथ में पुष्प लेकर ध्यान करे। यथा—

ॐ ध्येयः सदा सवितृ-मण्डल-मध्य-वर्ती, नारायणः सरसिजासन - सन्निविष्टः।
केयूर-वान् कनक-कुण्डल-वान् किरीटी, हारी हिरण्मय-वपुर्धृत-शङ्ख-चक्रौ ।।

इस प्रकार ध्यान कर हाथ में लिए पुष्प को अपने शिर पर रखे और मानसोपचारों से पूजन कर पुनः उसी प्रकार ध्यान करे। तब निम्न प्रकार बाह्य पूजन करे—

'एतत् पाद्यं ॐ नमो नारायणाय नमः'—इस मन्त्र से पाद्य प्रदान कर यजुर्वेदी उपासक **'एषोऽर्घः'**, ऋग्वेदी **'एषोऽर्घ्यः'** और सामवेदी उपासक **'इदमर्घ्यं'** कहकर अर्घ्य प्रदान करे। इसी प्रकार क्रमशः 'आचमनीय' आदि अर्पित करे। यथा—

एतदाचमनीयं। एष गन्धः। एतत् पुष्पं। एतत् तुलसी - पत्रं। एष धूपः। एष दीपः। एतन्नैवेद्यं। एतत् पानार्थं जलं। एतत् पुनराचमनीयं। एतत् ताम्बूलं।

यथा-शक्ति उपचारों से पूजन कर मन्त्राक्षरों की पूजा करे। यथा—

ॐ ॐ नमः। ॐ न नमः। ॐ मो नमः। ॐ ना नमः। ॐ रा नमः। ॐ य नमः। ॐ णा नमः। ॐ य नमः।

अब 'चक्र'-पूजा करे। यथा—

ॐ आचक्राय नमः। ॐ विचक्रायः नमः। ॐ सुचक्राय नमः। ॐ त्रैलोक्य-रक्षण-चक्राय नमः। ॐ सुदर्शन-चक्राय नमः। ॐ दैत्यान्तक-चक्राय नमः। ॐ असुरान्तक-चक्राय नमः। ॐ जगच्चक्राय नमः। ॐ परम-चक्राय नमः। ॐ शाल-ग्राम-शिलाऽधिष्ठातृ-वासुदेवाय नमः।

इस प्रकार पूजन कर यथा-शक्ति मन्त्र का जप कर उसका फल 'गुह्याति-गुह्य-गोप्ता०' इत्यादि मन्त्र से देवता को समर्पित कर हाथ में अर्घ्य-पात्र लेकर निम्न-लिखित 'यमराजोक्त षट्-पदी' का पाठ करते हुए तीन बार प्रदक्षिणा करे—

ॐ अविनयमपनय विष्णो ! दमय मनः शमय विषय-रस-तृष्णाम् ।
भूत - दयां विस्तारय तारय संसार - सागरतः ।। १
दिव्य-धुनी - मकरन्द - परिमल - परिभोग - सच्चिदानन्दे ।
श्रीपति - पदारविन्दे भव - खेद - च्छिदेऽरविन्दे ।। २
सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ।। ३
उद्धृत - नग - नग-भिदनुज - कुलामित्र - शशि-दृष्टे ।
दृष्टे प्रभवति न भवति भव - तिरस्कारः ।। ४
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारय तां सुधाम् ।
परमेश्वर ! परि - पाल्यो भव - ताप - भीतोऽहम् ।। ५
दामोदर! गुण-मन्दिर ! सुन्दर-वदनारविन्द ! गोविन्द !
भव-जलधि मथन - न्दर ! परमं दरमपनय त्वं मे ।
नारायण ! करुणा-मय ! शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।। ६

इसके बाद शङ्ख को शिर पर घुमा कर निम्न वन्दनाओं का पाठ करते हुए तीन, पाँच या आठ अङ्गों से प्रणाम करे—

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिव-विरिञ्चि-नुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्त्तिहं प्रणत-पाल - भवाब्धि-पोतं वन्दे महा-पुरुष ! ते चरणारविन्दम् ।। १
त्यक्त्वा सु-दुस्त्यज-सुरेप्सित-राज-लक्ष्मीं धर्मिष्ठ-आर्य-वचसा यदगादरण्यम् ।
माया-मृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महा-पुरुष ! ते चरणारविन्दम् ।। २
ॐ नमो ब्रह्मण्य-देवाय गो-ब्राह्मण-हिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।। ३

प्रणाम करने के बाद प्रार्थना करे । यथा—

नाथ ! योनि-सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहं, तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युताऽस्तु सदा त्वयि ।
या प्रीति-रतिरेकाणां विषयेष्वन-पायिनी, त्वामनु-स्मरतः सा मे हृदयान्नाप-सर्पतु ।।
युवतीनां यथा यूनि यूनां च युवतौ यथा, मनोऽभि-रमते तद्वन्मनो मे रमतां त्वयि ।

तब 'कृतार्थोऽस्मि' कहकर नृत्य-गीतादि से यथा-शक्ति देवता को प्रसन्न करे और निम्न मन्त्र से चरणामृत लेकर उसका पान करे—

ॐ कृष्ण, कृष्ण, महा-बाहो, भक्तानामार्त्ति-नाशय ! सर्व-पाप-प्रशमनं पादोदकं प्रयच्छ मे ।

बचे हुए चरणोदक को निम्न मन्त्र से अपने शिर पर धारण करे—

ॐ अकाल-मृत्यु हरणं सर्व-व्याधि-विनाशनं, विष्णु-पादोदकं पुण्यं शिरसा धारयाम्यहम् ।

शाल-ग्राम शिला के जल से जो अपने सिर का अभिषेक करता , उसकी अकाल-मृत्यु नहीं होती और उसकी सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं । उसे सभी तीर्थों के स्नान करने का और समस्त यज्ञों का पुण्य मिल जाता है । उसका पान कर जो उसे शिर पर धारण करता है, वह विष्णु-लोक को प्राप्त करता है ।

'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'वृहन्नारदीय' में कहा है कि जो हृदय में हरि का रूप, मुख में हरि का नाम, पेट में हरि का नैवेद्य और मस्तक पर हरि के पादोदक तथा निर्माल्य को धारण करता है, वह अच्युत-स्वरूप हो जाता है। मृत्यु के समय जिसके मुख में चरणों का जल दिया जाता है, वह कितना ही पापी हो, भगवान् विष्णु के लोक को जाता है।

'वशिष्ठ-संहिता' में लिखा है कि शाल-ग्राम शिला के जल को पिए बिना जो अपने शिर पर डालता है, उसे ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। विष्णु के पादोदक के पीने से कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। भूमि पर उसके विन्दु यदि गिर जाते हैं, तो आठ गुना अधिक पाप गिरानेवाले को होता है। विष्णु के पादोदक को लेने से पूर्व विप्र के पादोदक का पान करना चाहिए, मोह-वश ऐसा न करनेवाला आत्म-हत्या जैसे पाप का भागी होता है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं, वे सब सागर में हैं और सागर में जितने तीर्थ हैं, वे सब विप्र के पैरों में हैं। पादोदक देने का मन्त्र निम्न प्रकार है—

वत्स ! तुभ्यं मया दत्तं पिब शेषं परामृतं, सर्वदा सुखदं देव ! जयं देहि, रिपुं दह।

नैवेद्य-भक्षण का मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ उच्छिष्ट-भोजनं तस्य वयमुच्छिष्ट-कांक्षिणः, येन नील-वराहेण हिरण्याक्षो निपातितः।

दधि-वामन आदि के विशिष्ट मन्त्रों के लिए 'तन्त्रसार' द्रष्टव्य है।

विष्णु की पूजा-विधि— 'सनत्कुमार तन्त्र', द्वितीय पटल में बताया है कि ब्राह्म मुहूर्त्त में उठे, शुद्ध होकर आसन पर बैठे और हाथ जोड़कर गुरुदेव को नमस्कार करे। फिर बारम्बार आत्मा के ब्रह्म-स्वरूप का चिन्तन करे और मन्त्र का यथा-शक्ति जप कर सभी वादियों का विजयी बने।

इसके बाद उठकर स्नानादि कर पवित्र हो वैदिकी सन्ध्या आदि करे। गुरु के उपदेशानुसार लौकिक कर्म भी करे। फिर **'मूलं श्रीकृष्णं तर्पयामि'** से तर्पण करे। पूजा-द्वार पर बैठ कर पैर धोये। अस्त्र-मन्त्र (फट्) से शिखा-बन्धन करे। आचमन कर द्वार-देवों की पूजा करे, जो पहले बताई जा चुकी है। विघ्नों को दूर कर हाथ और भूमि का शोधन करे। गुरु और गणेश को नमस्कार कर वास्तु-पूजा करे। ब्रह्मा की पूजा कर आत्म-शोधन, आसन-शोधन और भूत-शुद्धि कर साधक **'देवोऽहं'** अर्थात् 'मैं देव-स्वरूप हूँ'—ऐसी भावना करे।

तदनन्तर ऋष्यादि न्यास कर मातृका-न्यास करे। फिर तीन प्राणायाम कर अङ्ग-न्यास करे। तब विभूति-पंजर, मूर्ति-पञ्जर, तत्व-न्यास, मन्त्र-न्यास, व्यापकादि न्यास करे देखें ('हिन्दी तन्त्र-सार')।

गुरु के उपदेशानुसार शङ्ख-स्थापन और अर्घ्य-स्थापन कर द्रव्यों का अभ्युक्षण करे। फिर पीठ-भावना कर शरीर के अङ्गों में धर्म आदि की पूजा करे। हृदय में अनन्त आदि की यथा-विधि पूजा करे।

गृहस्थों को बाह्य-पूजन और संन्यासियों को अन्तः-पूजन करना चाहिए। सूर्य, गणेश, शिव और दुर्गा की पूजा करे। ताम्र के यन्त्र का निर्माण कर अनन्त आदि की पूजा करे। यन्त्र के कोणों में धर्म आदि की, उनके बगल में अधर्म आदि की और मध्य में अनन्त आदि १४ की पूजा करे। केशरों में विमला आदि देवताओं की पूजा करे।

आत्मा को देवता-रूप ध्यान कर अपने नासा-छिद्रों से उन्हें बाहर लाकर आवाहन-पूर्वक सदा उन देवता की पूजा करनी चाहिए। विधि-वत् प्राण-प्रतिष्ठा कर आवरण-देवताओं की पूजा करे। धूप-दीप देकर नैवेद्य अर्पित करे। तन्त्रोक्त मन्त्र का जप कर स्वय देव-रूप होकर पूजन करे। मूल-मन्त्र का उच्चारण कर **'श्रीकृष्णं तर्पयामि'** से तीन बार अर्घ्य-जल के मस्तक पर तर्पण करे। फिर तीन प्राणायाम कर तीन बार व्यापक न्यास करे। अपने तन्त्र के अनुसार प्रयोग करे।

विष्णु-पूजोपचार-मन्त्र—'योगिनी-पटल के अनुसार आवाहनादि उपचारों के मन्त्र—

१ आवाहन—मीन - रूपो वराहश्च नर - सिंहोऽथ वामनः । आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः ।
२ आसन—सुरेशस्य पाद-पीठे पद्म-कल्पितमासनं । सर्व-तत्व-हितार्थाय तिष्ठस्व मधु-सूदन !
३ पाद्य—पाद्यं च पादयोर्देव, पद्म-नाभ, सनातन ! विष्णो, कमल-पत्राक्ष ! गृहाण मधु-सूदन !
४ अर्घ्य—त्रैलोक्य-पतीनां पतये देव-देवाय एव च । आर्याय हृषीकेशाय तस्मै श्रीविष्णवे नमः ।
५ आचमनीय—मन्दाकिन्यास्तु ते वारि जय पापं हराशुभं । गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितं ।
६ स्नान—त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वह्निरेव च । लोक-सम्वित्ति-मात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहं ।
७ वस्त्र—देव ! वस्त्रं समायुक्तं यज्ञ-वर्ण-विभूषितं । स्वर्ण-वर्ण-प्रभेदेन वाससी तव केशव !
८ गन्ध—शरीरं ते लेपयामि चेष्टा सैव च केशव ! मया निवेदितो गन्धः प्रति-गृह्य विलिप्यतां ।
९ उपवीत—ऋग्वेदादिषु मन्त्रेण शोधितं पद्म-योनिना । सावित्री-ग्रन्थि-संयुक्तमुपवीतमथाक्षयं ।
१० अलङ्कार—दिव्य-वर्ण-समायुक्ता वह्नि-भानु-समन्विताः । गात्राणि शोभयन्त्येते अलङ्कारास्तु मानवाः ।
११ धूप—वनस्पति-रसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुरभिश्च भोः ! मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यतां ।
१२ दीप—सूर्यश्चन्द्रश्च विद्युच्च त्वमेवाग्निस्तथैव च । त्वमेव ज्योतिषां देव ! दीपोऽयं प्रति-गृह्यतां ।
१३ नैवेद्य—अन्नं पञ्च-विधं देव ! रसैः षड्भिः समन्वितं । मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव !

'मत्स्य-सूक्त', उपरि-भाग, अष्ट-चत्वारिंशत्-पटल में ये मन्त्र भिन्न रूप में दिये हैं । यथा—

१ आसन—'सुमेरोः पाद-पीठान्ते पद्म-कल्पितमासनं । सर्व-सत्व-हितार्थाय गृहाण मधु-सूदन !'
२ पाद्य—'सु-पाद्यं पादयोर्देव, पद्म-नाभ, सनातन ! विष्णो, कमल-पत्राक्ष ! गृहाण मधु-सूदन !'
३ अर्घ्य—'त्रैलोक्य-पतीनां पते, देव-देव, जनार्दन ! गृहाणार्घ्यं जगन्नाथ ! नाना-मलयजं प्रभो !'
४ आचमनीय—'मन्दाकिन्यास्तु यद्-वारि सर्व-पाप-हरं शुभं । गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितं ।'
५ मधुपर्क—'मधुपर्कं महा-देव ! ब्रह्माद्यैः परि-कल्पितं । मय निवेदितं भक्त्या गृहाण मधु-सूदन !'
६ वस्त्र—'दिव्य-वस्त्र-समायुक्ते बहु-तन्तु-विनिर्मिते । सुवर्ण-प्रभवे देव ! वाससी तव केशव !'
७ उपवीत—'ऋग्-यजुः-साम-मन्त्रेण निर्मितं पद्म-योनिना । सावित्री-ग्रन्थि-संयुक्तमुपवीतं तवाच्युत !'
८ धूप—'वनस्पति-रसोत्पन्नो गन्धाढ्यः सुर - सम्मतः । आघ्रेयः सर्व-देवानां धूपोऽयं प्रति-गृह्यतां ।'
९ दीप—'सूर्या-चन्द्रमसोर्ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रति-गृह्यतां ।'
१० नैवेद्य—'अन्नं चतुर्विधं चैव रसैः षड्भिः समन्वितं । मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव !'
११ अलङ्कार—'दिव्य-तन्तु-समायुक्ता वह्नि-भानु-समन्विताः । गात्राणि तव शोभन्तामलङ्काराः शुभा इमे ।'

अक्षय धन-प्राप्ति का प्रयोग—'नारद-पञ्चरात्र', तृतीय रात्र के १५वें अध्याय में श्री व्यास जी ने अक्षय धन की प्राप्ति के लिए यह प्रयोग बताया है कि सहस्र-सूर्यों के समान उज्ज्वल भवनों से युक्त द्वारावती में रत्न-जटित खम्भों, द्वारों, तोरणों से सुशोभित मण्डप में, जो बहुत से कल्पवृक्षों से आच्छादित है, और जहाँ सभी दिशायें रत्न-दीपों से प्रकाशमान हैं, कल्प-तरु के नीचे उदय - कालीन सूर्य के समान आभावाले कमलात्मक सिंहासन पर विराजमान प्रदीप्त स्वर्ण के समान कान्तिवाले अच्युत का ध्यान करे । यथा—

पीले वस्त्र पहने हैं, शङ्ख, चक्र, गदा और कमल हाथों में लिए हैं। रुक्मिणी और सत्यभामा उनके दाएँ और बाएँ ओर खड़ी हैं, जो अपने हाथों में स्थित कलशों द्वारा उन पर रत्नौघों की वर्षा कर रही हैं। उन दोनों के दाएँ और बाएँ ओर मित्र-वृन्दा और सुलक्षणा खड़े हैं। उनके हाथों में भी रस-पूर्ण कलश हैं। हरि की सोलह सहस्र प्रियायें उज्ज्वल कलशों से इसी प्रकार स्वर्ण-वर्षा करती हुई वहाँ विद्यमान हैं। उनके घेरे के बाहर आठों निधियाँ पृथ्वी को धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण कर रही हैं। उनके हाथों में भी स्वर्ण और रत्न की वर्षा करनेवाले चमकीले कलशों का ध्यान करना चाहिए। निधियों के बाहर वृष्णि-गणों और सभी देवताओं को उसी प्रकार विद्यमान भावना करनी चाहिए।

उक्त प्रकार से ध्यान कर मन्त्र का चार लाख जप करे। बाइस सहस्र होम घृत से करे। इस मन्त्र के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता श्रीकृष्ण हैं। बीज, शक्ति आदि पूर्व-वत् हैं।

सनत्कुमार द्वारा कथित इस मन्त्र की विधि यह है कि पूर्वोक्त क्रम से पीठ-न्यास तक के कर्म कर दोनों हाथों की अँगुलियों और कर-तलों में षडङ्ग-न्यास करे। फिर मन्त्र से व्यापक न्यास कर मन्त्र से सम्पुटित मातृका-न्यास करे। संहार, सृष्टि के मार्ग से दस तत्वों का न्यास कर पुनः व्यापक न्यास करे। तब शरीर में मन्त्र-वर्णों का न्यास करे। मूर्धा, भाल, भौहों के मध्य, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नाक, चिबुक (ठुड्डी), कण्ठ, भुजाओं के मूल भाग, हृदय, उदर, नाभि, लिङ्ग, मूलाधार, कटि, दोनों जानु, दोनों जङ्घा, दोनों गुल्फ और दोनों पैर—इन सब स्थानों में सृष्टि-न्यास किया जाता है। स्थिति-न्यास हृदय से प्रारम्भ कर नासिका तक होता है और संहार-न्यास पैरों से आरम्भ किया जाता है।

उक्त प्रकार स्थिति तक पाँच न्यास कर षडङ्ग-न्यास करे। तब 'किरीट'-मुद्रा बाँधकर पूर्व-वत् दिग्-बन्धन करे। ध्यान करके मूर्ति-पञ्जर-पूर्वक अर्चन करना चाहिए।

अथवा गोबर से लिपे स्थान पर पीठ स्थापित करे। पीठ के ऊपर गन्ध के पङ्क से अष्ट-दल कमल की रचना कर उसकी कर्णिका में षट्-कोण अङ्कित करे। सत्रह अक्षरों से उसका वेष्टन कर सन्धियों में छः अक्षर और केशरों में तीन-तीन अक्षर लिखे। अष्ट-दल में काम-गायत्री और माला-मन्त्र लिखे। उसके बाहर मातृकाक्षरों से वेष्टन करे और तब भू-गृह की रचना करे।

स्वर्णादि पत्रों में इस मन्त्र को लिखकर अर्चन-पूर्वक जो धारण करता है, वह देवताओं के भी द्वारा पूजित होता है। 'काम-गायत्री' निम्न प्रकार है—

कामदेवाय पुष्प-बाणाभ्यां विद्महे धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्।

चतुरस्र भू-गृह को आठ वज्रों से विभूषित करे। पीठ में पूर्व-वत् कर पूजन भगवान् अच्युत को पौरुषी मूर्ति की कल्पना कर उनका वहाँ आवाहन-सकलीकरण कर आसन से लेकर आभूषण तक के उपचारों से उनका अर्चन करे। तब क्रमशः सृष्टि, स्थिति, षडङ्गादि न्यास कर पहले भगवान् के किरीट, दोनों कुण्डलों, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, माला, श्रीवत्स और कौस्तुभ की पूजा गन्धाक्षत-पुष्प से मूल-मन्त्र द्वारा करे। आदि में कोणों में षडङ्गों की पूजा करे। आग्नेयादि दलों के मूल भाग में वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और शान्ति, लक्ष्मी, सरस्वती, रति आदि की पूजा करे। उनके बाहर चन्द्रः, वज्रादि आवृत्तियों का पूजन करे। इस प्रकार अच्युत भगवान् के सात आवरणों की पूजा कर दधि, चीनी, घृत, दूध और जल के मिश्रण को प्रदान कर उन्हें प्रसन्न करे। स्तुति, प्रणाम कर परिवार-गणों के साथ केशव को अपने हृदय में उद्भासित करे। उनसे युक्त आत्मा का नमन-पूजन कर मन्त्र का जप करे।

कामदेव का ४४ अक्षरों का मन्त्र निम्न प्रकार है—

काम-देवाय सर्व-जन-प्रियाय सर्व-जन-सम्मोहनाय । ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्व-जनस्य हृदयं मम वशं कुरु-कुरु ।

इस मन्त्र के आदि में काम-वीज (क्लीं) लगाकर जप करने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं।

जप, होम, अर्चन और ध्यान-पूर्वक जो इस मन्त्र का जप करता है, उसका घर रत्न, स्वर्ण और धान्य से भर जाता है । फसलों से युक्त पृथ्वी उसके हाथ में रहती है । पुत्रों और मित्रों से वह भरा-पूरा रहकर अन्त में श्रेष्ठ मोक्ष को प्राप्त करता है ।

अग्नि में गोविन्द की पूजा कर घृत में मिश्रित पुष्प-युक्त श्वेत चावलों से दस सहस्र आहुतियाँ देकर उस होम-भस्म को अपने मस्तक पर लगाए, तो सब प्रकार के अन्नों से घर भर जाता है और सभी वशीभूत होते हैं ।

घृत या मधुर-युक्त रक्त पद्मों से एक लाख आहुतियाँ देने से देवराज इन्द्र जैसा ऐश्वर्य प्राप्त होता है ।

श्वेत पुष्पों से होम करने से उज्ज्वल वस्त्रों का लाभ होता है ।

विष्णु के नामों का माहात्म्य—'मत्स्य-सूक्त', 'महा-तन्त्र', १६ वें पटल के विष्णु के पवित्र नामों का प्रहर-काल में कीर्तन करने से मनुष्य सहस्र कोटि कल्पों तक वैकुण्ठ में निवास करता है । क्षण-क्षण पर पहले, दूसरे और तीसरे नाम का भक्ति-पूर्वक उच्चारण करते रहने से विष्णु-लोक की प्राप्ति होती है । नाम-कीर्तन करनेवालों को किसी प्रकार का भय नहीं सताता । जो दिन रात नाम-कीर्तन करता है, वह अपने सहस्रों कुलों का उद्धार कर विष्णु को प्राप्त करता है । तीनों सन्ध्याओं में नाम-कीर्तन करनेवाला विष्णु-लोक को जाता है । '**ॐ नमो नारायणाय**'—इस मन्त्र को जो बुद्धिमान् जपते हैं, उन्हें अन्य बहुत से मन्त्रों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती । इसी से उन्हें सभी अभीष्ट मिल जाते हैं ।

श्रीकृष्ण-शतनाम-स्तोत्रम्

नारद-पञ्च रात्र, चतुर्थ-रात्र, प्रथमाध्याय में उमा-माहेश्वर-सम्वाद में श्रीकृष्ण उवाच—

वसुन्धरे, वरारोहे ! नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । सर्व - मङ्गल - माङ्गल्यमणिमाद्यष्ट-सिद्धिदं ।।
महा-पातक-कोटिघ्नं सर्व - तीर्थ-फल-प्रदम् । समस्त-जप - यज्ञानां फलदं पाप - नाशनम् ।।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । सहस्र-नाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत् फलं ।।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नाम्नैकं तत् प्रयच्छति । तस्मात् पुण्य-तमं चैतत् स्तोत्रं पाप-प्रणाशनं ।।

विनियोग—श्रीकृष्णस्याष्टोत्तर-शत-नाम्नां श्रीशेष ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णः देवता, श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः ।

ॐ श्रीकृष्णः कमला - नाथो वासुदेवः सनातनः । वसुदेवात्मजः पुण्यो लीला-मानुष-विग्रहः ।। १
श्रीवत्स-कौस्तुभ-धरो यशोदा-वत्सलो हरिः । चतुर्भुजस्तु चक्रासि - गदा-शङ्खाम्बुजायुधः ।। २
देवकी-नन्दनः श्रीशो नन्द-गोप - प्रियात्मजः । यमुना - केलि-संहारी मुचुकुन्द - प्रसादकः ।। ३
षोडश-स्त्री - सहस्रेशस्त्रि-भङ्गी मधुराकृतिः । शुक - वागमृतावर्द्धी गोविन्दो गोविदां पतिः ।। ४
वत्स-पालन - सञ्चारी धेनुकासुर - भञ्जनः । उत्तान-ताल-भेत्ता च तमाल-श्यामलाकृतिः ।। ५
गोप-गोपीश्वरो योगी सूर्य-कोटि - सम-प्रभः । इला - पतिः परं - ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्वहः ।। ६
वन-माली पीत - वासाः पारिजातापहारकः । गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्ता गोपालः सर्व-पालकः ।। ७

अजो निरञ्जनः काम-जनकः कञ्ज-लोचनः । मधुहा मथुरा - नाथो द्वारका-नायको बली ।। ८
वृन्दावनान्त - सञ्चारी तुलसी-दाम-भूषणः । स्यमन्तक - मणेर्हर्त्ता नर - नारायणात्मकः ।। ९
कुब्जा-कृष्णाम्बर-धरो मायी परम - पूरुषः । मुष्टिकासुर - चाणूर-महा-यज्ञ - विशारदः ।। १०
संसार - वैरी - कंसारिर्मुरारिर्नरकान्तकः । अनादिब्रह्मचारी च कृष्णा - व्यसन-कर्षकः ।। ११
शिशु - पाल - शिरश्छेत्ता दुर्योधन-कुलान्त-कृत् । विदुराक्रूर-वरदो विश्व-रूप - प्रदर्शकः ।। १२
वृषभासुर-विध्वंसी बाणासुर-बलान्त-कृत् । युधिष्ठिर - प्रतिष्ठाता बर्हि - बर्हावतंसकः ।। १३
जगद्-गुरुर्जगन्नाथो वेणु - वाद्य - विशारदः । पार्थ - सारथिरव्यक्तो गीतामृत-महोदधिः ।। १४
कालीय-फणि-माणिक्य-रञ्जित - श्रीपदाम्बुजः । दामोदरो यज्ञ-भोक्ता दानवेन्द्र-विनाशनः ।। १५
नारायणः परं-ब्रह्म पन्नगाशन-वाहनः । जल-क्रीड़ा - समासक्त गोपी - वस्त्रापहारकः ।। १६
पुण्य-श्लोकस्तीर्थ-वेद्यो वेद-वेद्यो दया-निधिः । सर्व-तीर्थात्मकः सर्व - ग्रह - रूपी परात्परः ।। १७

फल-श्रुति—

इत्येवं कृष्ण - देवस्य नाम्नामष्टोत्तर - शतं । कृष्णेन कृष्ण-भक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ।। १
स्तोत्रं कृष्ण-प्रिय-करं कृतं तस्मान्मया श्रुतं । कृष्ण - नामामृतं नाम परमानन्द - दायकं ।
अनुपद्रव - दुःखघ्नं परमायुष्य - वर्द्धनं ।। २
दानं श्रुतं तपस्तीर्थं यत् - कृतं त्विह जन्मनि । पठतां शृण्वतां चैव कोटि-कोटि-गुणं भवेत् ।। ३
पुत्र - प्रदमपुत्राणामगतीनां गति - प्रदं । धनावहं दरिद्राणां जयेच्छूणां जयावहं ।। ४
शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुण्य - वर्द्धनं । वात-ग्रह-ज्वरादीनां शमनं शान्ति - मुक्तिदं ।। ५
समस्त - कामदं सद्यः कोटि - जन्माघ-नाशनं । अन्ते तु कृष्ण-स्मरणं भव - ताप - भयापहं ।। ६
कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञान - शुद्धाय योगिने । नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदान्त-वेदिने ।। ७
इमं मन्त्रं महा-देवि ! जपेन्नरो दिवा - निशं । सर्व-ग्रहानुग्रह - भाक् सर्व - प्रियतमो भवेत् ।। ८
पुत्र - पौत्रैः परिवृतः सर्व-सिद्धि-समृद्धिमान् । निवेश्य गोपानन्तेऽपि कृष्ण-सायुज्यमाप्नुयात् ।। ९
।। नारद-पञ्च-रात्रे ज्ञानामृत-सारे चतुर्थ-रात्रे श्रीकृष्णाष्टोत्तर-शत-नाम-स्तोत्रं ।।

काष्ठ-पात्र में विष्णु की पूजा का निषेध—'मत्स्य-सूक्त', १६ वें पटल में लिखा है कि लकड़ी के पात्र में विष्णुदेव की प्रतिमा को रखना, उनका पूजन करना और मिट्टी के पात्र में स्थापित करना—ये तीनों ही कर्म दरिद्रता-दायक हैं। इसी प्रकार हस्त (हाथी-दाँत) कांस्य, शङ्ख, पीतल और चाँदी के पात्र भी निषिद्ध हैं।

स्वर्णादि-पत्रों में विष्णु की पूजा का फल—स्वर्ण, ताम्र, शिला, नारिकेल, पद्म, किंशुक (पलाश) और अश्वत्थ आदि के पात्रों में विष्णु की पूजा करने से अयुत यज्ञों का पुण्य मिलता है। नारिकेल आदि वृक्षों के पत्रों, पुष्पों और छाल आदि का उपयोग किया जाता है।

पुरुष-सूक्त की महिमा—वहीं, १५ वें पटल के अनुसार जो 'पुरुष-सूक्त' द्वारा एक भी पुष्प विष्णु को अर्पित करता है, उसे सारे चराचर जगत् की पूजा का फल प्राप्त होता है। एक ही ऋचा को जानकर जो उसे पढ़कर जलाञ्जलि देता है, उसे सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है। जल में खड़े होकर 'पुरुष-सूक्त' का पाठ करने से सभी कर्मों से मुक्ति मिलती है और जो नित्य सावधानी के साथ 'पुरुष-सूक्त' का जप करता है, वह एक वर्ष के भीतर ही देवेश्वर वासुदेव का दर्शन पा जाता है।

द्रव्य-विशेष द्वारा विष्णु को स्नान कराने का फल—वहीं, १६ वें पटल में लिखा है कि शीतल जल या कुश-पुष्पोदक से विष्णु को स्नान कराने से ब्रह्म-लोक की प्राप्ति होती है। रत्नोदक से स्नान कराने से सूर्य-लोक की और स्वर्ण-जल से कुबेर-लोक को उपलब्धि होती है। सर्वौषधि का जल देने से अश्व-मेध का फल मिलता है।

उबटन का फल—कलाय, यव, हल्दी-उड़द या चावल—इनमें से किसी एक के चूर्ण द्वारा उबटन लगाने से विष्णु-लोक की प्राप्ति होती है।

शरीर धोने का फल—जौ, गेहूँ के लेप और गरम जल से विष्णु की प्रतिमा को धोने से वरुण-लोक की प्राप्ति होती है।

मुख धोने का फल—पैर रखने के लिए पीठ और मुख धोने के लिए प्रक्षालन हेतु विल्व-पत्र रगड़ना चाहिए। इससे सभी पापों से मुक्ति मिलती है।

महा-स्नान का फल—तुला-मकर और मेष में जो महा-स्नान करता है, वह साठ सहस्र युगों तक ब्रह्म-लोक में रहता है। पञ्चामृत में से प्रत्येक को १०० पल ले अथवा उसका आधा या आधे का आधा ले। इससे कम नहीं। इसी प्रकार एक सहस्र घट, सौ घट या उसके आधे घट लेकर सहस्र धार या सौ धार या उसकी आधी धार अथवा आधी की आधी धार ले। पचीस पल कषाय ले। उष्ण जल उतने ही घड़ों में ले। इस प्रकार जो स्नान करता या कराता है, उसके सात जन्मों के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। अलग-अलग प्रत्येक द्रव्य की मात्रा चार तोला है। इससे कम मात्रा में स्नान नहीं कराना चाहिए। लिखा है कि—

शङ्ख में रखे हुए जल द्वारा विष्णु-मन्त्र से जो केशव को स्नान कराता है, वह अपने सौ कुलों को मुक्त करा देता है। कपिला गाय का दूध लाकर शङ्ख में रखकर उससे स्नान कराये, तो एक सहस्र कन्या-दान का पुण्य मिलता है। अन्य गाय के दूध से उसका आधा और कुश-जल से दूना फल मिलता है। तीन लाख पुष्प-पत्रों से अर्चन करे, तो महा-पूजा होती है। कलियुग में एक लाख का विधान है। उसका आधा मध्यम और उसका भी आधा कनिष्ठ फल-दायक होता है।

शङ्ख-महिमा और उसके लक्षण—शङ्ख की उत्पत्ति सागर से हुई है और विष्णु उसे अपने हाथ में धारण करते हैं। उसके दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर उसे छूने का फल कितना अधिक होगा, यह समझने की बात है। वासुदेव के सम्मुख पुष्प और जल से युक्त शङ्ख पूजित होकर स्थित रहता है। उस शङ्ख द्वारा पुष्प-जलाक्षत से जो देवता को अर्घ्य देता है, उसे सागर-सहिता पृथ्वी की प्राप्ति होती है। शङ्ख द्वारा अर्घ्य देकर जो देवता की प्रदक्षिणा करता है, वह सात द्वीपों वाली पूरी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने का पुण्य प्राप्त करता है। शङ्ख में रखे तीर्थोदक को जो विष्णु के शिर के चारों ओर घुमाता है, उसे लक्ष्मी देवी सभी प्रकार के भोग प्रदान करती हैं।

'क्रिया-सार' में शङ्ख के लक्षण बताए हैं। गो-दुग्ध के समान श्वेत, स्निग्ध और दीर्घ नालवाला वृहदाकार शङ्ख देव-पूजन में प्रशस्त है। दक्षिणावर्त शङ्ख 'द्विज-शङ्ख' माना गया है, अतः वह विशेष फल-दायक होता है।

'स्कन्द-पुराण' के अनुसार दक्षिणावर्त-शङ्ख के जल से जो विष्णु को पूजा करता है, उसके सात जन्मों के पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं।

'क्रिया-सार' में लिखा है कि ताम्र, स्फटिक-सुवर्ण और चाँदी में दोष नहीं होता। तुषा (धान की भूसी) से रगड़ने से शङ्ख की शुद्धि हो जाती है।

'मत्स्य-सूक्त', १६ वें पटल के अनुसार नदी, तालाब, बावली, कुएँ या सरोवर—सभी प्रकार का जल शङ्ख में रखने पर गङ्गा-जल के समान पवित्र हो जाता है। तीनों लोकों में जितने तीर्थ हैं, वे सब शङ्ख में विराजमान हैं अतः शङ्ख की पूजा करनी चाहिए। शङ्खोदक द्वारा अष्टाक्षर मन्त्र से जो विष्णु की पूजा करता है, वह तत्काल सङ्कट से छूट जाता है। शङ्ख को भूमि पर न रखे। यदि गलती से भूमि पर रखें, तो उसे पुनः धोना चाहिए और चन्दनोदक, दुग्ध आदि से उसे शुद्ध कर निम्न मन्त्र से प्रणाम करना चाहिए—

ॐ त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। निर्मितः सर्व-देवैश्च पाञ्च-जन्य ! नमोऽस्तु ते।

'त्रिपदी' का लक्षण—'वीर-मित्रोदय' में उद्धृत 'सिद्धान्त-शेखर' के अनुसार ६४ मात्राओं की तिकोनी यन्त्रिका, जिसमें तीन वृत्त हों, उत्तम होती है। इसके तीन पैर होने से यह 'त्रिपदा' कहलाती है। पैरों का मध्य भाग खुला होता है। पात्रों के आधार-रूप में इस त्रिपादिका का उपयोग किया जाता है।

तुलसी की महिमा—'मत्स्य-सूक्त', १६वें पटल में लिखा है कि सभी पत्र-पुष्पों में तुलसी सबसे श्रेष्ठ है। सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाली शुद्ध वैष्णवी तुलसी विष्णु को बड़ी प्रिय है। यह भुक्ति-मुक्ति-दायिनी और सभी लोगों की कल्याण-कारिणी है। मञ्जरी और पत्रों के सहित तुलसी से जो विष्णु की पूजा करता है, उसके पुण्य का वर्णन करना सम्भव नहीं है। तुलसी के पुष्पों से गरुड़-ध्वज विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिए।

भगवान् राम ने तुलसी का पौदा लगाकर उसकी यथा-विधि पूजा की थी, जिसके फल-स्वरूप उन्हें रावण पर विजय मिली। अतः जो यथा-विधि तुलसी का पौदा लगाते हैं और उसकी पूजा करते हैं, उन्हें सभी प्रकार की सिद्धि मिलती है। जल-सहित तुलसी-पत्र को जो अपने सिर पर धारण कर भगवान् विष्णु को अर्घ्य देता हुआ नमस्कार करता है, उसे अनायास ही मोक्ष मिल जाता है।

नदी के किनारे, श्मशान में, ऊसर में और म्लेच्छ के निकट तुलसी का पौदा न लगाये।

तुलसी लगाने की विधि—घर के ईशान कोण के सामने 'ताल'-मात्र गड्ढा खोद कर उसमें पञ्च-गव्य और मयूराण्ड छोड़ें। सायं-काल तुलसी का पौदा लगाकर सात बार सूत से उसे लपेटे। फिर उसके मूल-भाग में सुन्दर गोलाकार हाथ भर की पिण्डी बनाए। तब चौकोर वेदी बनाकर जल की धार देकर गन्ध, पुष्प, धूप और घृत-दीप से उसकी पूजा करे। खीर और दही का भोग लगाये। **'तुलस्यै नमः'** से 'अर्घ्य' देने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। शङ्ख में जल भरकर उसमें दूब, अक्षत, चन्दन-युक्त कुशा का अग्र भाग और पुष्प डालने से 'अर्घ्य' प्रस्तुत होता है।

ध्यायेद् देवीं नव-शशि-मुखीं पक्व-बिम्बाधरोष्ठीं, विद्योतन्तीं कुच-युग-भरानम्र-कल्पाङ्ग-यष्टिम्।
ईषद्धास्योल्लसित-वदनां चन्द्र-सूर्याग्नि-नेत्रां, श्वेताङ्गीं तामभय-वरदां श्वेत-पद्मासनस्थाम्॥

तुलसी-प्रणाम मन्त्र—निम्न मन्त्र से तुलसी को प्रणाम करना चाहिये—

श्रियं देहि यशो देहि कीर्तिमायुस्तथा सुखं। बलं पुष्टिं तथा धर्मं तुलसि ! त्वं प्रयच्छ मे॥

तुलसी-माला के धारण की विधि—'भगवद्भक्ति-विलास' के अनुसार कृष्ण को तुलसी-दल के साथ चढ़ाई हुई माला को धारण करे। तुलसी की लकड़ी से बनी हुई माला और उसी के आभूषण वैष्णव को अपने मस्तक, कानों, भुजाओं और कलाइयों में यथा-रुचि पहनना चाहिए।

'स्कन्द पुराण' में लिखा है कि तुलसी की लकड़ी की बनी माला को पहले हरि को निवेदन करे। तब उसे उत्तम भागवत धारण करे। कृष्ण को अर्पित किए बिना जो तुलसी-माला को धारण करता है, वह मूर्ख नरक को जाता है। माला को पहले पञ्च-गव्य से धोए, मूल-मन्त्र से अभिमन्त्रित करे और गायत्री-मन्त्र से उसे आठ बार अभिमन्त्रित कर धूपित करे। विधिपूर्वक बड़ी भक्ति के साथ 'सद्योजात'-मन्त्र से उसका पूजन कर निम्न मन्त्र से उसकी प्रार्थना करे--

तुलसी-काष्ठ-सम्भूते, माले कृष्ण-जन-प्रिये ! बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्ण-वल्लभम्।
यस्मात् त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्यं विष्णु-जन-प्रिया, तथा मां देवेशि! नित्यं विष्णु-जन-प्रियम् ॥
माले ! नाधातुरुद्दिष्टो नासि मां हरि-वल्लभे ! भक्तेभ्यश्च समस्तेभ्यस्तेन माला निगद्यते ॥

इस प्रकार प्रार्थित तुलसी-माला को कृष्ण-प्रतिमा के गले में पहनाए। ऐसी माला को जो वैष्णव धारण करता है, वह विष्णु के पद को प्राप्त करता है।

माला पहनने की आवश्यकता--'कार्तिक-प्रसङ्ग' के अनुसार जो धात्री (आँवला) के फल की बनी माला को कण्ठ में नहीं पहनता, वह मनुष्य विष्णु की पूजा करने पर भी 'वैष्णव' नहीं होता।

'गरुड़ पुराण' में लिखा है कि जो पाप-बुद्धि लोग माला नहीं पहनते, वे नरक में जाते हैं।

'स्कन्द-पुराण' के अनुसार तुलसी-माला पहन कर जो हरि की पूजा करता है, उसके सभी कर्म अनन्त-फल-दायक होते हैं।

'नारदीय' में लिखा है कि जिनके गले में तुलसी-माला है, जिनके बाहु-मूल शङ्ख-चक्र के चिह्नों से युक्त हैं और जिनके मस्तक ऊर्ध्व-पुण्ड्र से शोभित हैं, उन वैष्णवों से सभी लोक पवित्र हो जाते हैं।

वैष्णव-प्रशंसा--'नारद पञ्चरात्र', प्रथम रात्र, नवें अध्याय के अनुसार अनन्त-दासों की बड़ी अद्भुत महिमा है। कृष्ण-मन्त्र के उपासकों का चरणोदक सभी तीर्थों और पृथ्वी को पवित्र कर देता है। ब्राह्मण के मुख से जिसके कान में कृष्ण-मन्त्र पड़ता है, उसे विद्वान् संसार में सबसे पवित्र मानते हैं। मन्त्र ग्रहण करने मात्र से ही वह नारायण-स्वरूप बन जाता है। ऐसे वैष्णवों के दर्शन और स्पर्श से ही सभी कुछ पवित्र हो जाता है। वहीं, १० वें अध्याय में ब्रह्मा जी का कथन है कि वैष्णव को सङ्गत से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

दशावतारों के आविर्भाव का समय--१ मत्स्यावतार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, सोमवार, रेवती नक्षत्र, द्वादश नाड़िका-मध्य में। **२ कूर्मावतार :** ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र, दिवा-घटी चार में। **३ वराहावतार :** आश्विन शुक्ल सप्तमी, अश्विनी नक्षत्र, दिन की आठवीं घटी में। **४ नृसिंहावतार :** वैशाख शुक्ल चतुर्दशी, शनिवार, स्वाती नक्षत्र, मध्याह्न में। **५ वामनावतार :** भाद्र शुक्ल द्वादशी, शुक्रवार, श्रवण नक्षत्र, दिन को दस-पाँच घटी के मध्य में। **६ परशुरामावतार :** वैशाख शुक्ल तृतीया, शनिवार, रोहिणी नक्षत्र, रात्रि ग्यारह घटी के मध्य में। **७ रामावतार :** चैत्र शुक्ल नवमी, सोमवार, पुनर्वसु नक्षत्र, पूर्वाह्न में। **८ कृष्णावतार :** भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र, मध्य रात्रि में। **९ बुद्धावतार :** आषाढ़ शुक्ल नवमी, विशाखा नक्षत्र, दिवा-नाड़ी-षट्क के मध्य में। **१० कल्कि अवतार :** मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया, शनिवार, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, रात्रि तीन घटिका के मध्य में।

विष्णु-पूजा के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण 'हिन्दी तन्त्रसार' में देखना चाहिए।

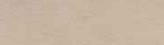

छठा परिच्छेद

महा-विद्यादि का कथन

महा-विद्या का निरूपण—'चामुण्डा तन्त्र' के अनुसार १ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी, ६ छिन्नमस्ता, ७ धूमावती, ८ बगला, ९ मातङ्गी और १० कमला—ये दस महा-विद्यायें सिद्ध-विद्याएँ हैं। 'विश्वसार' में कहा है कि काली और तारा दो महा-विद्याएँ हैं और बगला सिद्ध-विद्या है क्योंकि वह तुरन्त सिद्धि प्रदान करती है।

महा-विद्याओं की महिमा—'कुब्जिका तन्त्र', प्रथम पटल के अनुसार कलियुग में कृष्णत्व को पाकर शुक्ल-वर्णा होती हुई भी नील-रूपिणी सहज ही वाक्-शक्ति प्रदान करती हैं, अतः 'नील-सरस्वती' नाम पड़ा है। तारने—मुक्ति देने के कारण 'तारा' को 'तारिणी' कहते हैं। भुवनों का पालन करने से और सृष्टि-स्थिति-कारिणी होने से 'भुवनेशी' प्रसिद्ध हैं। सदा श्री प्रदान करने से 'श्रीविद्या' और निर्गुणा महा-देवी 'षोडशी' नाम से प्रख्यात हैं। दुःखों का संहार करनेवाली, यम (मृत्यु) के सङ्कट को दूर करनेवाली और काल-भैरव की भार्या होने से 'भैरवी' कही गई हैं। त्रि-शक्ति, त्रि-गुणा, मोहिनी और मोक्ष-दायिनी होने से 'छिन्ना' नाम पड़ा है। धूम्रासुर का नाश करने से 'धूमावती' प्रसिद्ध हैं, जो धूम-रूपा हैं और चतुर्वर्ग को देनेवाली, जगत् का उपकार करनेवाली जगन्माता हैं। 'व' से वारुणी, 'ग' से सिद्धिदा और 'ल' से चैतन्य पृथिवी-स्वरूपा 'बगला' प्रसिद्ध हैं। मद-शील के कारण और सभी आपत्तियों से छुड़ानेवाली होने से मतङ्गासुर का नाश करनेवाली 'मातङ्गी' कही गई हैं। वैकुण्ठ-वासिनी देवी 'कमला' हैं। वे ही पाताल-वासिनी होकर 'लक्ष्मी'-रूपा सुन्दरी हैं।

उक्त दसो महा-विद्याएँ नित्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष—इन चारों वर्गों के फल देनेवाली हैं। कलि-युग में ये पूरा फल देती हैं। इनके सम्बन्ध में कंजूस, पाखण्डी, निन्दा-वादी, भक्ति और आस्था-हीन व्यक्ति को कभी न बताना चाहिए। केवल सद्-गुणी, अच्छे लक्षणवाले व्यक्ति को ही इनकी उपासना देनी चाहिए। इन महा-विद्याओं के समान तीनों भुवनों में अन्य कोई नहीं है। इनमें से किन्हीं एक महा-विद्या का नामोच्चारण करने मात्र से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है। जो इनका स्मरण करता रहता है, वह भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

महा-विद्यादि के भैरवों का निरूपण—'तोडल तन्त्र', प्रथम पटल के अनुसार विविध देवियों के भैरवों का नामोल्लेख है। यथा—

१ काली : महा-काल, २ तारा : अक्षोभ्य, ३ षोडशी : पञ्च-वक्त्र शिव, ४ भुवनेश्वरी : त्र्यम्बक शिव, ५ भैरवी : दक्षिणामूर्ति, (पञ्च-वक्त्र) ६ छिन्न-मस्ता : कबन्ध, ७ बगला : एक-वक्त्र महा-रुद्र, ८ मातङ्गी : मतङ्ग (दक्षिणामूर्ति), ९ कमला : सदाशिव (विष्णु-रूपी), १० अन्न-पूर्णा : दश-वक्त्र महेश्वर, ११ दुर्गा : नारद।

उक्त सभी भैरव या शिव सम्बन्धित देवी के दक्षिण भाग में शोभा पाते हैं। शेष विद्याओं के मन्त्र में जो ऋषि बताये गये हैं, वही उनके पति-रूप 'भैरव' या शिव माने जाते हैं।

यहाँ उल्लेखनीय है कि समुद्र-मन्थन के समय काल-कूट विष के उत्पन्न होने पर सभी देव-देवियों को अत्यन्त क्षोभ (कष्ट) हुआ किन्तु क्षोभ-रहित शिव ने उस हलाहल विष को पी लिया। तभी उनका नाम 'अक्षोभ्य' पड़ा। 'षोडशी' के शिव के पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं। उनके साथ देवी सदा काम-कुतूहला रहती हैं, अतः उन्हें 'पञ्चमी' भी कहते हैं। 'भुवनेश्वरी' स्वर्ग, मृत्यु-लोक और पाताल—तीनों भुवनों में शिव के साथ विहार करती हैं, अतः उनके शिव 'त्र्यम्बक' कहे गए हैं। 'कबन्ध' शिव के पूजन से साधक सब सिद्धियों का स्वामी होता है। 'तारद' नाम का 'न'कार सृष्टि-कर्ता का द्योतक है, 'द' कार पालन-कर्ता का और 'र'कार संहार-कर्ता का। उक्त सभी भैरवों का पूजन उनकी देवियों की दाईं ओर करना चाहिए।

महा-रात्रि आदि का निरूपण—'स्वतन्त्र तन्त्र' के अनुसार रात्रियों का विवरण निम्न प्रकार है—

१ **महा-रात्रि** : फाल्गुन कृष्णा एकादशी, २ **दिव्य-रात्रि** : ज्येष्ठ शुक्ला दशमी शुक्रवार से युक्त हो और रात्रि में एकादशी तिथि हो, ३ **भाव-रात्रि** : अमावास्या मङ्गलवार से युक्त हो और कुल-नक्षत्र का योग हो, ४ **सिद्धि-रात्रि** : चैत्र शुक्ला अष्टमी, ५ **दारुणा** : माधव (वैशाख) शुक्ला तृतीया कुल नक्षत्र से युक्त हो, ६ **काल-रात्रि** : दीपोत्सव की चतुर्दशी-अमावास्या के योग-काल में, ७ **मोह-रात्रि** : श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, ८ **क्रोध-रात्रि** : चैत्र शुक्ला नवमी, ९ **घोर - रात्रि** : मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी, १० **वीर-रात्रि** : कुल-नक्षत्र से युक्त चतुर्दशी का मङ्गलवार से योग हो।

विद्या की उत्पत्ति और काली का माहात्म्य—'नारद पञ्चरात्र' के तृतीय रात्र के तृतीय अध्याय में ब्रह्माजी का कथन है कि दक्ष के घर में आविर्भूत लोक-विख्यात सती ने कुपित होकर देह-त्याग किया और मेनका पर कृपा कर उनको पुत्री-रूप से जब जन्म लिया, तब वे ही 'काली' नाम से प्रसिद्ध हुईं। 'स्वतन्त्र-तन्त्र' के अनसार 'महा-रात्रि' के दिन अवन्ती नगरी में मुक्ति-दायक कालो-रूप का आविर्भाव हुआ। 'नारद पञ्चरात्र' में इनका माहात्म्य बताया है। यथा—मुनि-श्रेष्ठ विश्वामित्र ने ब्रह्मा की उपासना की किन्तु उन्हें 'ब्राह्मणत्व' नहीं मिल सका। तब वे विष्णु के पास गए। उनसे भी उन्हें 'ब्रह्मत्व' नहीं मिला। इस प्रकार सभी देवों की बार-बार उपासना उन्होंने की। अन्त में वृहस्पति के उपदेशानुसार उन्होंने भगवान् शिव की आराधना की। महेश के दर्शन मिलने पर उन्होंने यह प्रार्थना की कि—'हे देवेश्वर भगवन्, महा-देव ! आप कृपा-मय हैं, मुझे 'ब्राह्मणत्व' का वर देने की कृपा करें।' इस पर महेश्वर ने कहा—कालिका की एकाक्षरी महा-विद्या बड़ी दुर्लभ है। उसी का जप करो। उसी से तुम्हें 'विप्रता' मिल जाएगी।' यह कहकर वे अन्तर्ध्यान हो गए।

विश्वामित्र ने विधिपूर्वक उस जगन्मयी की आराधना की, किन्तु उन्हें अभीष्ट सिद्धि नहीं मिली। क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दिया कि 'तुम अनाराध्या हो जाओ।' वे पुनः महेश्वर के पास पहुँचे। भगवान् शिव ने कहा कि—'हे राजन् ! तुमने शाप क्यों दिया ? ध्यान से सुनो, 'रेफारूढ़ ककार' से ही सिद्धि पा सकोगे, अन्य कोई उपाय नहीं है।' यह कह शिव जी अन्तर्ध्यान हो गए। विश्वामित्र ने शिवोक्त विधान से पुनः जप किया, जिससे शीघ्र ही रुद्र-सहित भगवती काली उनके समक्ष प्रकट हुईं और उनसे बोलीं कि 'हे राजेन्द्र ! वर माँगो। जो तुम चाहोगे, वही मैं तुमको दूँगी, इसमें सन्देह नहीं।'

विश्वामित्र ने कहा कि 'मैंने ब्रह्मादि सभी देवताओं की आराधना की, किन्तु किसी ने मुझे विप्रत्व प्रदान नहीं किया। आप मुझे वही प्रदान करें।'

यह सुनकर देवी ने स्वामी के मुख की ओर गूढ़ भाव से देखा और संकेत किया। महा-देव ने देवी की इच्छा समझकर बड़े प्रेमपूर्वक अपने दोनों हाथों से विश्वामित्र का आलिङ्गन किया और उन्हें विप्रत्व प्रदान किया। उसी क्षण से राजा विश्वामित्र में विप्रत्व आ गया और वे सभी शास्त्रों के ज्ञाता और पारङ्गत बन गए। भगवती काली की उपासना की ऐसी ही महिमा है।

'नारद-पञ्चरात्र' के द्वितीय रात्र के दो भाग हैं। २२ अध्यायवाले एक भाग में विद्या की उत्पत्ति, शिव-लिङ्ग के आविर्भाव आदि का वर्णन है और १५ अध्यायवाले दूसरे भाग में प्रातःकृत्यादि से पूजा-विधि के अन्तिम कर्मों तक का वर्णन है। उसमें 'क्रम-दीपिका' के ही वचन प्रायः मिलते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

तारा का माहात्म्य—'नारद-पञ्चरात्र', तृतीय रात्र, द्वितीय अध्याय में बताया है कि दक्ष-गृह में उत्पन्न 'सती' कैवल्य-दायिनी हैं, अतः वे **'एक-जटा'** नाम से स्मरणीय हैं। तारने से—मुक्ति देने से वे **'तारा'**, अपनी लीला मात्र से वाक्-शक्ति देने से वे **'नील-सरस्वती'** और अपनी उग्रता के कारण **'उग्र-तारा'** कहलाती हैं। उग्र आपत्तियों से रक्षा करती हैं, अतः **'उग्र-तारा'** नाम पड़ा है।

'स्वतन्त्र तन्त्र' में कहा है कि काल-रात्रि के दिन निशा-काल के मध्य में उग्र आपत्तियों से उद्धार करने के लिए जगदम्बा की अपनी कला मेरु-पर्वत के पश्चिमी तट पर 'चोलन' नामक महान् ह्रद् (सरोवर) से माता **'नील-सरस्वती'** के रूप में आविर्भूत हुई। 'चोल' सरोवर में तेजोराशि के गिरने से वह नील-वर्णा हुई। उसी सरोवर के उत्तरी भाग में भगवान् शिव के अंश-स्वरूप **'अक्षोभ्य'** नामक ऋषि भगवती की आराधना में निमग्न रहे। कूर्च-बीज (हूँ) स्वरूप वाली वे **'नील-सरस्वती'** 'प्रत्यालीढ़'—पद वाली हुईं।

'नारद पञ्चरात्र' के अनुसार सात कोटि महा-विद्यायें हैं और उन्हीं के अनुरूप उप-विद्यायें हैं, जिनके स्वरूपों की संख्या का वर्णन करना सम्भव नहीं है। एक बार विष्णु गरुड़ पर बैठे हुए नीलाचल पर्वत को पार करने लगे। पर्वत पर स्थित महात्माओं ने उन्हें मना किया कि 'यहाँ सबकी आदि-भूता विश्व-रूपा सनातनी महा-शक्ति विराजमाना हैं। उन्हें लाँघकर जाना उचित नहीं है।' किन्तु विष्णु भगवान् ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और आगे बढ़ना चाहा। इस पर गरुड़ की गति स्तम्भित हो गई। विष्णु नीचे उतरे और अष्ट-भुज होकर नील-पर्वत को उखाड़ फेंकने का प्रयास करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर भगवती ने उन्हें सिद्ध-सूत्र से बाँध कर लवण-सागर में फेंक दिया। यह देखकर ब्रह्माजी विस्मित हो गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने विष्णु से पूछा, 'यह आपकी दशा कैसे हो गई ?'

विष्णु ने उनसे कहा कि 'पहले आप मुझे यहाँ से निकालिए।' महा-तेजस्वी ब्रह्मा जी ने उन्हें बाहर निकालना चाहा किन्तु वे भी बन्धन में पड़कर उसी सागर में गिर गए। इसी प्रकार इन्द्रादि सभी देवों की दुर्दशा हुई।

कुछ समय बाद देव-गुरु बृहस्पति जब स्वर्ग-लोक गए, तो वहाँ किसी को न देखकर शिव-लोक में पहुँचे। शिव-लोक में सबको देखकर वे हर्षित हुए और हाथ जोड़कर भगवान् शिव से पूछा कि 'ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि कहाँ गए ? मुझे लगता है कि असुरों के भय से वे कहीं छिप गए हैं।'

शिव ने उन्हें बताया कि 'भगवती कामाख्या की अवमानना करने के कारण वे सभी लवण-सागर में पड़े दुःख का भोग कर रहे हैं।' बृहस्पति ने उनसे देवों के उद्धार के लिए उपाय करने का आग्रह किया, जिस पर भगवान् शिव उन्हें साथ लेकर लवण-सागर के तट पर पहुँचे। देवों के उद्धार

के लिए उन्होंने 'कामाख्या-कवच' का पाठ किया और बाँयाँ हाथ फैलाकर देवों को पकड़कर सागर से बाहर निकाला। भूमि पर पहुँचकर सभी देव काँपते हुए दण्ड-वत् गिरकर महा-देव की वन्दना करने लगे। शिव ने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि 'आप सब जगन्माता अम्बिका कामाख्या को प्रसन्न करें।' विष्णु को आगे कर सभी देवों ने जाकर परमेश्वरी कामाख्या की वन्दना कर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया। इस पर दूर से ही सनातनी जगद्-योनि कामाख्या भगवती ने उनसे कहा—'हे दुर्बुद्धि देवों! मेरी अवज्ञा करने से तुम्हें क्या मिला? अब बताओ, तुम क्या चाहते हो?'

भगवान् विष्णु ने कहा कि 'हे माता! मैं आपके इस महा पवित्र क्षेत्र की आठो दिशाओं में अपनी शक्तियों के सहित आपकी आज्ञा के वशीभूत रहते हुए सदा अहर्निश उपस्थित रहूँगा। आप प्रसन्न हों।'

यह सुनकर जगन्मयी जगन्माता ने प्रसन्न होकर कहा, 'ऐसा ही हो।' तारिणी देवी की उत्तम महिमा का यह कुछ वर्णन है। उसे विस्तार से बताना सम्भव नहीं है।

षोडशी का माहात्म्य—वहीं, पाँचवें अध्याय में ब्रह्माजी ने बताया है कि किस प्रकार भगवती काली ने महा-माया सुन्दरी का स्वरूप धारण किया। एक बार देवराज इन्द्र ने भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करने के लिए सभी अप्सराओं को कैलास पर्वत पर भेजा। महादेव ने उन्हें देखकर कहा कि 'पुरुष के अतिथि पुरुष ही होते हैं और स्त्रियाँ स्त्री की ही अतिथि होती हैं। अतः तुम लोग कालिका के पास चलो।' यह कहकर उन्होंने स्वयं भी कैलास-पुरी के भीतर प्रवेश किया और परमेश्वरी महा-काली को पुकार कर उनसे अप्सराओं को मिलाया। उस अवसर पर भगवान् शिव के मुख से 'काली, काली, कालिका' आदि सम्बोधनात्मक शब्दों को बारम्बार सुनकर देवी महा-काली ने मन में सोचा कि 'मैं अपने इस रूप को छोड़कर शुद्ध गौरी-रूप को धारण करूँ क्योंकि महा-देव मुझे काली-काली कह रहे हैं।' यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गईं। उसी समय नारद जी वहाँ पहुँचे। उन्होंने पूछा—'भगवन्! आपको छोड़कर काल-विनाशिनी कहाँ गईं?'

महादेव ने उत्तर दिया—'हे मुनि-श्रेष्ठ! देवी मुझे छोड़कर अन्तर्धान हो गई हैं।'

यह सुनकर नारद मुनि ने ध्यानस्थ होकर देखा कि परमेश्वरी महा-काली सुमेरु पर्वत के उत्तरी भाग में विराजमाना हैं। वे तत्काल वहाँ जा पहुँचे और स्तुति कर उन्हें प्रणाम किया। देवी ने उनसे पूछा कि 'महेश्वर के क्या कुशल-समाचार हैं? मुझे बताइए।'

नारद जी ने कहा—'महेश्वर अपने विवाह के लिए उद्योग कर रहे हैं। आप उन्हें रोकें।'

यह सुनकर परमेश्वरी ने लाल आँखोंवाला जाज्वल्यमान ऐसा स्वरूप धारण किया, जो अनुपम था। तीनों लोकों में वैसा सौन्दर्य कहीं नहीं था। उसी रूप में वे महादेव के पास जा पहुँचीं और उनसे बोलीं—'हे महादेव! तुम कृतघ्न हो। मुझसे जो प्रतिज्ञा की, उसे भुलाकर अपने हृदय में विवाह की बात ले आए हो?'

परमेश्वर शिव ने हँसकर कहा—'हे कल्याणि! मैं कृतघ्न नहीं हूँ। मैंने प्रतिज्ञा का लङ्घन नहीं किया है। मेरे हृदय में तुम्हारी ही निर्मल छाया है, जिसे तुम स्वयं ज्ञान-दृष्टि से देख सकती हो।'

प्रेम-भाव से युक्त होकर भगवती ने कहा—'हे जगत्-पति! तुम्हारे हृदय में मेरी जो छाया है, उसका वर्णन तुम्हीं करो। मैं सुनूं।'

भगवती कालिका की यह बात सुनकर गद्‌गद होकर श्रीशिव बोले—हे शिवे ! तुमने तीनों भुवनों में सबसे श्रेष्ठ रूप को धारण किया है। अतः स्वर्ग और पाताल में तथा अन्यत्र तुम 'सुन्दरी', 'पञ्चमी', 'श्री' और 'त्रिपुर-सुन्दरी' नामों से विख्यात होगी। तुम सदा षोडश-वर्षीया रहोगी, जिससे तुम्हारा 'षोडशी' नाम होगा। तुम्हारी जो छाया मेरे हृदय में है और जिसे देखकर हे सुरेश्वरि ! तुमको भय लगा कि मैं प्रतिज्ञा-भङ्ग कर बैठा हूँ, वह तुम्हारा स्वरूप 'त्रिपुर-भैरवी' नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा। भगवती का जो कृपा-मय स्वरूप है, वह 'भुवनेशानी' और 'राज-राजेश्वरी' नामों से ज्ञात होगा।

वही उग्र-तारिणी, दिक्कर-वासिनी, ललित-कान्ता, मङ्गल-चण्डिका, कौषिकी, देव-दूती, त्रिपुरा, जय-दुर्गा, वन-दुर्गा, त्रि-कण्टकी, कात्यायनी, महिषघ्नी, दुर्गा, वन-देवता, श्रीराम-देवता, वज्र-प्रस्तारिणी, शूलिनी, गुह्य-देवी, मेधा, राधा, कालिका आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध है। यह संक्षेप में कहा है। विस्तार से सभी भेदों का वर्णन करना सम्भव नहीं है। 'षोडशी' का ऐसा ही माहात्म्य है।

विद्युद्-गौरी की उत्पत्ति—जगत् की माता काली ने कहा कि 'हे महा-देव ! मैं अन्य रूप धारण करूँगी।' भगवान् ने कहा कि 'हे जगद्धात्रि ! जो भी रूप तुम धारण करना चाहो, वही मैं बना दूँगा।' देवी ने कहा कि 'हे देवेश ! तुम सर्व-कर्ता हो किन्तु मैं कठिन तप करके मर्यादा स्थापित करूँगी। अपनी प्रसन्नता के लिए गौर, रक्त-गौर, श्याम या शुक्ल जो भी वर्ण रुचिकर हो, वैसा ही मेरा स्वरूप तब बनाना।' इस पर शिव ने कहा—'जैसा तुम्हारी इच्छा किन्तु तुम्हारे विरह से मुझे असह्य दुःख होता है।'

अपने पति को सान्त्वना देकर भगवती मन्दाकिनी नदी के तट पर गईं। वहाँ उन्होंने कठिन दिव्य तपस्या की, जिसके फल-स्वरूप वृषभ-ध्वज देवेश प्रकट हुए और बाँएँ हाथ से सतो साध्वो को उठाकर उनकी देह का मार्जन किया। मन्दाकिनो के जल में पार्वती को स्नान कराने से वे 'विद्युत्' के समान रूपवाली हो गईं। वे ही 'विद्युद्-गौरी' नाम से प्रख्यात हुईं। 'स्वाहा-गौरी' श्याम-वर्णा और 'रक्त-गौरी' शुक्ल-वर्णा हुईं। इसी प्रकार शाकम्भरी, षट्-पदी भ्रामरी आदि स्वरूप एवं अनेक वर्ण वाले अनन्त रूपों का आविर्भाव हुआ।

अर्द्ध-नारीश्वर आदि की उत्पत्ति—वहीं, दसवें अध्याय में यह वृत्तान्त है कि भगवान् शिव के हृदय में विराजमान अपनी छाया को देखकर सनातनी देवी ने प्रेमपूर्वक उनसे कहा—हे देव-देव ! आपके हृदय में अपनी निर्मल छाया देखकर मैं व्याकुल हो उठी हूँ। अतः यदि आपको मुझ पर स्नेह है, तो मुझे स्नान कराने की कृपा करें।'

इस पर ईश्वर ने कहा कि 'मैं अभी तुम्हारे अर्द्धाङ्ग को निकालता हूँ, साथ ही अपने अर्द्धाङ्ग को भी।'

यह कहकर उन्होंने अपने नख से अपने और गौरी के शरीर से एक-एक भाग निकाले और उन दोनों भागों को एकीभूत कर दिया। इस प्रकार शिव और गौरी के आधे-आधे अङ्गों के सम्मिलन से 'अर्द्ध-नारीश्वर शिव' का आविर्भाव हुआ। शरीर के शेष भागों को भगवान् शिव ने अपने दोनों हाथ से पिण्डीभूत कर वैकुण्ठ में पहुँचा दिया, जो आज भी तेजोरूप में वहाँ विद्यमान है।

छिन्न-मस्ता आदि की उत्पत्ति—वहीं लिखा है कि एक बार पार्वती जी दो सखियों (डाकिनी और वर्णिनी) के साथ मन्दाकिनी नदी में स्नान करने गईं। स्नान करने के बाद वे कामाविष्टा होकर

कृष्ण-वर्णा हो गईं। उसी समय दोनों सखियों ने उनसे कहा कि 'हम भूखी हैं, हमें भोजन देने की कृपा करें।' यह सुनकर देवी ने अपने बाँएँ हाथ के नखाग्र से अपने शिर का छेदन कर दिया। शिर कट कर उनके बाएँ कर-तल में आ गिरा और उनके कण्ठ से तीन रक्त-धाराएँ बह निकलीं, जिनमें से एक-एक धारा दोनों सखियों के खुले हुए मुखों में और एक धारा स्वयं उनके कटे हुए शिर के खुले हुए मुख में गिरने लगी। इस प्रकार मुण्ड के छिन्न होने से भगवती के **'छिन्न-मस्ता'**-स्वरूप का आविर्भाव हुआ।

'स्वतन्त्र-तन्त्र' में भी इसी प्रकार की कथा है, केवल इतना अन्तर है कि उसके अनुसार डाकिनी और वर्णिनी नामक सखियों की उत्पत्ति स्वयं भगवती के शरीर से बताई गई है। वहाँ यह भी उल्लेख है कि बाद में भगवती ने जब कटे हुए शिर को पुनः अपने कबन्ध (धड़) पर धारण कर पूर्व-स्वरूप प्राप्त किया, तो वे विवर्णा हो गईं। उनके उस बिगड़े हुए वर्ण को देखकर भगवान् शिव को क्षोभ हुआ, जिसके फल-स्वरूप उनके शरीर से 'क्रोध-भैरव' का आविर्भाव हुआ।

नदी-तट पर भगवती छिन्न-मस्ता का आविर्भाव 'वीर-रात्रि' के दिन सायंकाल में हुआ था।

उच्छिष्ट-चाण्डालिनी की उत्पत्ति—'नारद-पञ्चरात्र', १२ वें अध्याय में, ब्रह्मा जी का कथन है कि कैलास में विराजमाना सती ने एक बार शम्भु से कहा कि 'हे जगन्नाथ! आपकी कृपा से मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तथापि मैं माता-पिता के पास जाना चाहती हूँ। मेरे साथ आप भी चलें।' इस पर भगवान् ने कहा कि 'तुम बिना बुलाए वहाँ जा सकती हो किन्तु मैं कैसे जा सकता हूँ? हाँ, तुम्हारे जाने पर तुमको वापस लाने के लिए मैं अवश्य आऊँगा।'

उसी समय सती की माता मेना के भेजे हुए क्रौञ्च वहाँ पहुँच गए और बताया कि माता मेना और पिता हिमवान् ने एक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए अपनी पुत्री को बुलाया है। प्रसन्न होकर सती भगवान् शिव की अनुमति लेकर क्रौञ्च के साथ मातृ-गृह को चली गईं।

कालान्तर में भगवान् शिव शङ्खकार के वेष में अपनी ससुराल पहुँचे और गिरिराज के भवन में मूल्यवान दिव्य शङ्ख विक्रय हेतु सबको दिखाने लगे। पार्वती ने भी एक शङ्ख लेना चाहा, जिस पर छद्म-वेशी शङ्कर ने कहा कि इसका जो मूल्य मैं माँगूंगा, वही देना होगा।'

इस पर पार्वती ने कहा कि 'मेरे पिता हिमवान् हैं और कृपा-मय शम्भु मेरे पति हैं। गण-नाथ आदि मेरे पुत्र हैं और मैनाक मेरा भाई तथा भतीजा स्वयं क्रौञ्च है। मेनका मेरी माता हैं। अतः जो भी मूल्य तुम माँगोगे, तुम्हें अवश्य दिया जायगा, इसमें सन्देह नहीं।'

शङ्खकार ने कहा कि 'मैं तुम पर आसक्त हो गया हूँ। अतः तुम शीघ्र ही मुझसे विवाह कर लो, यही मैं चाहता हूँ।'

शङ्खकार के इस अप्रत्याशित कथन से चकित होकर जब पार्वती ने ध्यान लगाया, तो वे जान गईं कि स्वयं शम्भु ही छद्म-वेश में पधारे हैं। तब वे बोलीं कि 'ठीक है, इस समय तुम जाओ। शीघ्र मैं तुम्हारे मनोरथ को पूरा करूँगी।'

कुछ दिनों के बाद किरात-वेश धारण कर पार्वती सखियों के साथ वहाँ पहुँचीं, जहाँ देवेश्वर शिव सन्ध्यादि उपासना करते थे और नृत्य-गान-क्रीडादि करने लगीं। उनके मनोहर रूप को देखकर शिव ने उनसे पूछा कि 'हे सुन्दरि! तुम कौन हो? यहाँ किसलिए आई हो?'

इस पर पार्वती ने उत्तर दिया कि 'मैं चाण्डाली हूँ। यहाँ देवत्व-प्राप्ति की अभिलाषा से तप करने आई हूँ।'

भगवान् शिव ने कहा कि 'मैं शिव हूँ और तुम्हें अभी पार्वती के समान बना देता हूँ। तुम मुझे पति-रूप में स्वीकार करो।'

इस पर पार्वती ने अपना परिचय दिया और कहा कि 'मैं पार्वती ही हूँ।'

भगवान् बोले कि 'तुम चाण्डाल-वेश में मेरे पास आई हो, इसलिए तुम्हारा यह स्वरूप 'उच्छिष्ट-चाण्डालिनी' नाम से ज्ञात होगा। पूजा के अन्त में जब तक तुम्हारा पूजन नहीं किया जायगा, तब तक वह पूजा अधूरी ही रहेगी। तुम्हारा यह स्वरूप 'मातङ्गी' नाम से भी विख्यात होगा और जिस प्रकार काली, तारा, सुन्दरी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला आदि तुम्हारे महा-विद्या, सिद्ध-विद्या आदि उत्तम रूप हैं, उसी प्रकार तुम्हारा यह 'मातङ्गी'-रूप सिद्ध-विद्या-स्वरूप होगा।'

'स्वतन्त्र' तन्त्र में उच्छिष्ट-चाण्डालिनी के आविर्भाव की कथा भिन्न रूप में है। वहाँ नारद जब विष्णु से सङ्गीत का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हैं, तब भगवान् विष्णु उन्हें बताते हैं कि 'एक बार मैं शिव-लोक गया था। वहाँ मैंने देखा कि मारीच-गण से घिरे हुए शङ्कर-पार्वती विविध प्रकार के रसास्वादन में तन्मय हैं और अनेक-गुणोंवाली कन्याएँ 'उच्छिष्टं देहि-देहि' कहती हुई उनसे प्रसाद माँग रही हैं। उस समय उन कन्याओं पर प्रसन्न होकर शिव-शक्ति ने उन्हें यह वरदान दिया कि 'जो कोई जप-होमादि से तुम कन्याओं की आराधना करेगा, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।' तभी से वे 'उच्छिष्ट-मातङ्गी' नाम से प्रसिद्ध हैं।

धूमावती की उत्पत्ति—'नारद-पञ्चरात्र', १३ वें अध्याय में ब्रह्माजी का कथन है कि कैलास में गिरिजा ने शिव से कहा कि 'मैं भूखी हूँ, मुझे खाने को दो।' शिव ने कहा, 'ठहरो, अभी भोजन देता हूँ।' किन्तु गिरिजा ने उग्र क्षुधा के वश अपने पति शिव को ही पकड़ कर अपने मुख में डाल लिया। फलतः तत्काल उनके शरीर से धुआँ-ही-धुआँ निकलने लगा। उस समय अन्तर्हित शिव ने माया के द्वारा अपनी पत्नी से कहा कि 'हे प्रिये! मेरे सिवा कोई अन्य पुरुष नहीं है और न तुम्हारे सिवा कोई स्त्री है। अब तुम विधवा हो, अतः शङ्ख, सिन्दूर आदि सधवा के लक्षणों को त्याग दो। तुम्हारा पहला स्वरूप 'बगलामुखी' नाम से प्रख्यात रहा है, अब धुएँ से व्याप्त यह स्वरूप 'धूमावती' नाम से प्रसिद्ध होगा। ये दोनों ही स्वरूप सिद्धि-विद्याएँ होंगी।'

'स्वतन्त्र तन्त्र' के अनुसार दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब सती का देह-पात हुआ, तब उसमें से जो धुँआ निकला, उसी से सर्व-शत्रु-नाशिनी 'धूमावती' का आविर्भाव हुआ। काली की उत्पत्ति भौम-वार के सन्ध्या-काल में और धूमावती की अक्षय-तृतीया के दिन हुई।

बगला की उत्पत्ति—'स्वतन्त्र-तन्त्र' में कथित है कि प्राचीन काल में कृत-युग में वात-क्षोभ के कारण सृष्टि-नाश का सङ्कट उपस्थित हो गया। भगवान् विष्णु को चिन्ता हुई और सृष्टि-रक्षा के लिए उन्होंने तप द्वारा महा-त्रिपुर-सुन्दरी को प्रसन्न किया, जिसके फल-स्वरूप सौराष्ट्र में स्थित महा-पीत ह्रद में से त्रैलोक्य का स्तम्भन करनेवाली ब्रह्मास्त्र-विद्या 'श्री बगलाम्बिका' का आविर्भाव हुआ।

भौम-युता चतुर्दशी की कुल-नक्षत्र-युक्ता अर्द्ध-रात्रि 'वीर-रात्रि' कहलाती है। उसी काल में श्री श्रीविद्या का तेज श्रीबगला-मुखी-रूप में उत्पन्न हुआ, जिससे उक्त वात-क्षोभ शान्त हुआ।

मातङ्गी की उत्पत्ति—क्रूर जीवों को भय देनेवाली मातङ्गिनी के आविर्भाव की कथा वहीं यह लिखी है कि कदम्ब-वन में मतङ्ग नामक मुनि ने सब जीवों को वशीभूत करने के उद्देश्य से शत-सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या की। उसी तप के प्रभाव से श्री सुन्दरी के नेत्रों से तेजोराशि उत्पन्न हुई, जिसमें से स्वयं श्रीकालिकाऽम्बिका श्यामल रूप धारण कर 'राज-मातङ्गिनी' के रूप में आविर्भूत हुईं।

भुवनेश्वरी, महा-लक्ष्मी आदि की उत्पत्ति—'स्वतन्त्र तन्त्र' के अनुसार जगत् की सृष्टि करने के उद्देश्य से ब्रह्मा ने घोर तपस्या की, जिससे सन्तुष्ट होकर परमेश्वरी शक्ति स्वयं भगवती तारिणी चैत्र शुक्ला नवमी की 'क्रोध-रात्रि' में आविर्भूत हुईं।

क्षीर-सागर के मन्थन के फल-स्वरूप पद्मासना 'कमला' उत्पन्न हुईं, जिन्होंने विष्णु के वक्षः-स्थल में निवास किया। भाद्रपद की कृष्णाष्टमी में कोलासुर-नाशिनी महा-'मातङ्गिनी'-कला का आविर्भाव हुआ।

फाल्गुन की एकादशी तिथि में भृगुवार या भौमवार होने पर सर्व-सौभाग्य-दायिनी 'महा-लक्ष्मी' उत्पन्न हुईं।

महा-काल की उत्पत्ति—मार्गशीर्ष की कृष्णाष्टमी में 'घोर-रात्रि' होती है। उसी रात्रि में भगवान् 'महा-काल' का आविर्भाव हुआ।

बटुकादि की उत्पत्ति—ज्येष्ठ शुक्ला दशमी में 'बटुक' की, मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी में 'दन्ती' की और महा-दुर्गाष्टमी में 'महा-महिष-मर्दिनी' की उत्पत्ति हुई।

काली का प्रकरण—'महा-निर्वाण तन्त्र', चतुर्थ उल्लास में सदाशिव का कथन है कि 'हे महा-काली! तुम्हारा रूप जगत् का संहार-कारक है। महा-प्रलय के समय काल सबको ग्रस लेगा। सबका ग्रास करता है, इसी से उसका 'महा-काल' नाम पड़ा है। 'महा-काल' का कलन करने से तुम परा आद्या 'कालिका' कहलाती हो। साकारा होकर भी तुम निराकारा हो। अपनी माया से तुम बहुत से रूप धारण करती हो। तुम सबकी आदि हो किन्तु स्वयं अनादि हो। तुम सबकी जननी, पालिनी और नाश करनेवाली हो।

'गुप्त साधन तन्त्र', छठे पटल में बताया है कि 'आलीढ़' बाएँ पैर को कहते हैं और 'प्रत्यालीढ़' दाएँ पैर को। संहार-रूपिणी काली जगन्मोहिनी हैं। वे वह्नि-रूपा महा-माया श्मशान-वासिनी हैं। आलीढ़-पादा होती हुई भी वे देवी क्षण-क्षण में 'प्रत्यालीढ़ा' होती रहती हैं। अनन्त-रूपिणी श्यामा का वर्णन करने में कोई समर्थ नहीं है। वे चतुर्वर्ग-दायिनी हैं।

आद्या की प्रशंसा—'पिच्छिला तन्त्र', द्वितीय पटल में कहा है कि कलि-युग में काली ही एकमात्र उपास्या हैं। ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि देवता भी उन्हें ही नमन करते हैं। शान्ति आदि कर्मों में काली की विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए। कालिका-पूजन में श्रद्धा रखने से ग्रह, रोगादि का भय कभी नहीं होता। सभी मन्त्रों में कालिका का मन्त्र श्रेष्ठ है, जिसे ग्रहण करने से अधम प्राणी भी जीवन्मुक्त हो जाता है।

'कुब्जिका तन्त्र', प्रथम पटल के अनुसार समस्त पितर लोग तब हर्षित हो उठते हैं, जब उनके कुल में कोई व्यक्ति काली के मन्त्र की साधना करने को उद्यत होता है।

वहीं लिखा है कि कलियुग में कालिका पूर्ण फल देनेवाली परमा विद्या है। वह मोक्ष-दायिनी है। उस पाप-नाशिनी महा-विद्या को गुरु-मुख से ग्रहण करना चाहिए। सम्प्रदाय के अनुसार ही पूजनादि साधन करना चाहिए क्योंकि सम्प्रदाय से विहीन लोगों को पूजन का फल नहीं मिलता।

काली-निन्दा में दोष––'पिच्छिला तन्त्र', द्वितीय पटल के अनुसार भगवती काली की निन्दा करनेवालों की आयु कम हो जाती है और उनके पुत्र-परिवार का नाश होकर वे सब नरक में जाते हैं।

काली का मन्त्र और उसका फल––काली के मन्त्र से सर्वार्थ-साधक, सर्व-सिद्धीश्वर वीर पुरुष सारे लोकों में पूजित होता है। उस मन्त्र के ज्ञान मात्र से धर्मार्थ-काम-मोक्ष चारों वर्ग के फल वह प्राप्त करता है। सभी देव-देवियों में 'दक्षिणा काली' प्रकृति के समान हैं। उनका मन्त्र त्रैलोक्य में दुर्लभ है। 'यक्ष-स्कन्द' (क) का उद्धार कर उसे 'वह्नि' (र) और (ई) से युक्त करे अर्थात् 'क्री'। इसे 'इन्दु' अर्थात् 'ँ' से युक्त करने पर काली-बीज 'क्रीँ' प्रस्तुत होता है।

इसके समान कोई विद्या अर्थात् शक्ति-मन्त्र नहीं है। शान्ति, पुष्टि आदि कर्म इसके द्वारा शीघ्र ही सिद्ध होते हैं। महती आपत्ति में, महान् भय में, महती दरिद्रता के सङ्कट में, शत्रुओं के बढ़ने पर, रोग की वृद्धि में और भयङ्कर शासनादि भय में उक्त मन्त्र का केवल एक लाख जप करे, तो स्कन्द अर्थात् देव-सेनापति कार्तिकेय के समान भगवती काली जप-कर्ता की रक्षा करती हैं।

जप के बिना महा-विद्या और सिद्ध विद्या भी हानि पहुँचाती हैं। 'होम' के बिना ऐश्वर्य नहीं मिलता और 'जप' के बिना अभीष्ट सिद्धि नहीं मिलती। 'पूजा' के बिना अर्चन पूर्ण नहीं होता।

काली के मन्त्र को जाननेवाला सभी शास्त्रों के अर्थ का ज्ञाता, कवि, वक्ता, पराक्रमी, प्रिय-दर्शन और लोक-प्रसिद्ध होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।

दक्षिणा काली का कल्प––'गुप्त-साधन तन्त्र', छठे पटल में बताया है कि जिसकी कृपा मात्र से भव-सागर से रक्षा होती है, वह 'स्वरान्त' (क), 'वह्नि' (र्) से युक्त, 'वाम नेत्र' (ई) से विभूषित और 'विन्दु-नाद-कला' (ँ) से युक्त='क्रीँ' मन्त्र त्रैलोक्य-मोहन है।

इसके ऋषि 'भैरव', छन्द 'उष्णिक्', देवता 'दक्षिणा कालिका', बीज 'माया' (ह्रीं), शक्ति 'कूर्च' (हूँ), कीलक 'निज-बीज' (क्रीं) और विनियोग 'धर्मार्थ-काम-मोक्ष' के लिए है।

पूजा के पहले दिन क्षौरादि-कर्म करे। हविष्यान्न या निरामिष भोजन करे। अगले दिन प्रातः स्नान कर नित्य पूजा समाप्त कर देव-वत् शुद्ध मन होकर गुरुदेव या गुरु-पुत्र या गुरु-पत्नी से आगमोक्त पूजा सम्पन्न कराये। आगमोक्त पूजा का अधिकार गुरुदेव को ही है। गुरु के अभाव में साधक को स्वयं करना चाहिए।

तान्त्रिक पूजा के अधिकारी, गुरु द्वारा पूजा और उसका फल––'वरदा तन्त्र', १० वें पटल के अनुसार अपने कुल में कथित कर्मों को स्वयं करे अथवा गुरुदेव या पुत्रवती स्त्री से कराये। इसके सिवा अन्य प्रकार से कराने पर सारा अनुष्ठान व्यर्थ होता है। इस कथन से स्पष्ट है कि गुरु के अभाव में स्वयं ही तान्त्रिक पूजा करनी चाहिए। यदि स्वयं करने में असमर्थ हो, तो पुत्रवती स्त्री द्वारा कराना चाहिए।

अन्य द्वारा तान्त्रिक पूजा कराने में दोष––'गुप्त-साधन तन्त्र' में बताया है कि तान्त्रिक साधक के सिवा अन्य किसी से तान्त्रिक पूजा कराने से उस पूजा का सारा फल यक्ष, राक्षसादि ग्रहण कर लेते हैं। अतः गुरुदेव ही पूजा करने के अधिकारी हैं। साक्षात् ब्रह्म-रूपी गुरुदेव यदि स्वयं पूजा करें, तो उसका फल सौ-करोड़ गुना अधिक मिलता है।

यदि स्वयं पूजा करे, तो पूजा के सम्पन्न होने पर जो भी पूजा-द्रव्यादि हो, उसे गुरुदेव को निवेदित करे। गुरुदेव को जो कुछ दिया जाता है, उसका कोटि-गुना फल मिलता है। गुरु-पत्नी द्वारा पूजादि

करने में बलि-दान और होमादि कर्म नहीं किये जाते। होमीय द्रव्य को देवी के सामने रखकर मूल-मन्त्र उच्चारणपूर्वक महा-देवी को अर्पित कर देना चाहिए, इसी से होम का फल मिल जाता है। अग्नि में होम नहीं करना चाहिए।

पुरोहित द्वारा तान्त्रिक पूजादि में दोष--गुरुदेव द्वारा जो कुछ किया जाता है, उस सबका अक्षय फल होता है। तन्त्रोक्त पूजा पुरोहित से कभी न कराये अन्यथा सब प्रकार से हानि ही होती है और भगवती कालिका अप्रसन्न हो जाती हैं।

पूजा-काल में अन्य-मुख देखने में दोष--इष्ट-पूजादि कर्म अन्य लोगों के सामने कभी न करना चाहिए। भले पूजा छोड़नी पड़े--पूजा न करे, किन्तु दूसरे लोग पूजा को देखने न पायें, इसका ध्यान रखना चाहिए। अन्य लोगों के सामने यदि पूजा करनी ही पड़े, तो विष्णु-तन्त्र के अनुसार पूजा करे, वैसी ही मुद्राएँ दिखाएँ। ऐसे करने से पूजा कभी व्यक्त नहीं होती।

'वरदा' तन्त्र' के अनुसार विशेष कर्म को मन्त्र के समान गुप्त रखे। दीपावली-पूजादि में महोत्सव करे। भवानी की प्रसन्नता के लिए सारे कर्म प्रसन्न मन से करे। जिसकी जो इष्ट-देवता हो, उसके प्रति भक्ति रखे। भक्ति न रखने से बड़ा दुःख मिलता है। अपनी इष्ट-देवी और अपने गुरु को छोड़कर जो दूसरे में भक्ति रखता है, उसका सर्वनाश हो जाता है। साधकों को दूसरों की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। एक-मात्र ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ भी नहीं है—ऐसा सर्वत्र मानने का निर्देश भगवान् शिव ने किया है। उपाधि के भाव-भेद से विविध रूप होने से जो एक रूप को पूजा करता है, वह सभी को पूजा करने का फल पाता है।

आद्या की पूजा—पूजा के तीन प्रकार हैं—१ मानस, २ अन्तर्यागात्मिका और ३ बाह्य-यागात्मिका। 'मुण्डमाला तन्त्र,' ५ वें पटल में बताया है कि मानसी पूजा महा-सिद्धि और मुक्ति-दायिनी है। अन्तर्यागात्मिका पूजा सब प्रकार के जीवत्व को दूर करती है और राजसी बाह्य पूजा से सब प्रकार का सौभाग्य मिलता है। वह बाह्य पूजा भुक्ति-मुक्ति-प्रदा, सर्वापत्ति-नाशिनी, सर्व-दोष-हारिणी, सर्व-शत्रु-नाशिनी, सर्व-रोग-हरी, सर्व-बन्धन-मोचिनी है। वीर और पशु साधकों के लिए बाह्य पूजा उत्तम है किन्तु दिव्य-भाव के उपासकों के लिए वह उपयुक्त नहीं है।

'तोडल तन्त्र' के तीसरे पटल में सूत्र-रूप में पूजा - विधि बताई है। यथा—१ स्वस्ति-पाठ, २ सङ्कल्प, ३ घट-स्थापन, ४ मन्त्र द्वारा आचमन, ५ सामान्यार्घ्य-स्थापन, ६ उसके जल से द्वार का अभ्युक्षण, ७ द्वार-पूजा, ८ त्रिविध विघ्नों का निवारण, ९ भूतों का अपसारण, १० आसन-पूजा, ११ गुरु-देव को नमस्कार, १२ कर-शुद्धि, १३ ताल-त्रय से दिग्-बन्धन, १४ अग्नि-बीज (रं) से आवेष्टन, १५ भूत-शुद्धि, १६ मातृका से षडङ्ग-न्यास, १७ अन्तर्मातृका-न्यास, १८ मातृका-ध्यान-पूर्वक बाह्य-मातृका-न्यास, १९ पीठ-न्यास, २० प्राणायाम, २१ ऋष्यादि, कराङ्ग-और वर्ण-न्यास, २२ षोढा-न्यास, २३ व्यापक न्यास, २४ तत्त्व-न्यास, २५ बीज-न्यास और व्यापक न्यास, २६ मूल-मन्त्र द्वारा सात बार न्यास, २७ मानस-पूजन, २८ विशेषार्घ्य-स्थापन, २९ पीठ-पूजा और पुनः ध्यान, ३० मुद्रा-प्रदर्शन-पूर्वक आवाहनादि षडङ्ग, ३१ धेनु-आदि मुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा, ३२ मूल-पूजा के लिए अनुमति लेकर अङ्गों की पूजा कर कालो आदि की पूजा, ३३ ब्राह्मी आदि, असिताङ्ग आदि, महा-काल, खड्ग आदि, गुरु-पंक्ति और पुनः देवी का पूजन, ३४ बलिदान, ३५ होम, ३६ प्राणायाम - पूर्वक जप, ३७ जप-समर्पण और प्राणायाम,

३८ स्तुति और कवच-पाठ, ३९ अष्टाङ्ग प्रणाम, ४० 'शिवोऽहम्'—'मैं शिव हूँ', इस भावना के साथ संहार-मुद्रा द्वारा विसर्जन, ४१ ईशान कोण में मण्डल-निर्माण कर उच्छिष्ट-चाण्डालिनी को बलि-प्रदान, ४२ अर्घ्य को सिर पर धारण कर ललाट में चन्दन लेप, ४३ नैवेद्य-स्वीकार, ४४ यथेच्छ विहार।

महा-काल का ध्यान और खड्गादि-पूजा—'निरुत्तर तन्त्र', तीसरे पटल में महा-काल का ध्यान बताया है। यथा—

धूम्र-वर्णं महा-कालं जटा-भारान्वितं यजेत्,
त्रि-नेत्रं शिव-रूपं च शक्ति - युक्तं निरामयं।
दिगम्बरं घोर-रूपं नीलाञ्जन - चय - प्रभम्,
निर्गुणं च गुणाधारं काली-स्थानं पुनः पुनः॥

वहीं खड्गादि-पूजा का क्रम दिया है। यथा—बाएँ हाथ में खड्ग और मुण्ड का, दाँएँ हाथ में अभय और वर-मुद्रा का पूजन करे।

इसी प्रकार असिताङ्ग आदि का क्रम बताया है कि चारों द्वारों में असिताङ्गादि भैरवों की पूजा पूर्वादि क्रम से करे। प्रत्येक द्वार में दो-दो की पूजा करनी चाहिये।

संक्षिप्त पूजा और नित्य-पूजा—'तोडल तन्त्र,' तीसरे पटल के अनुसार संक्षिप्त पूजा-विधि इस प्रकार है—पहले ऋष्यादि न्यास, फिर कर-शुद्धि-पूर्वक अंगुलि और व्यापक न्यास एवं हृदयादि-न्यास। तब ताल-त्रय से दिग्-बन्धन कर प्राणायाम। फिर ध्यान, मानस-याग और अर्घ्य-स्थापन। तब पीठ-पूजा, पुनः ध्यान कर आवाहन करे। फिर जीव-न्यास (प्राण-प्रतिष्ठा) कर पर - देवता की पूजा। अङ्ग-पूजा, काल्यादि-ब्राह्मी आदि-अष्ट-भैरव और महा-काल की पूजा कर गुरु-पंक्ति की पूजा। तब खड्गादि की पूजा कर पुनः देवी की पूजा। फिर प्राणायाम - पूर्वक जप। देवी के हाथ में जप-फल का समर्पण। पुनः प्राणायाम-पूर्वक अष्टाङ्ग-प्रणाम कर स्तुति व कवच-पाठ। विशेषार्घ्य देकर आत्म-समर्पण-पूर्वक संहार-मुद्रा से विसर्जन। ईशान कोण में मण्डल बनाकर उच्छिष्ट-चाण्डालिनी को बलि। नैवेद्य-स्वीकार कर स्वेच्छापूर्वक विहार।

'पिच्छिला तन्त्र', १२ वें पटल में नित्य-पूजा की विधि दी है। वहाँ कहा है कि पूजा बिना कोई फल नहीं मिलता। पूजा करने से साधक स्वयं पूजा पाता है, अतः पूजा अवश्य करे। नित्य-पूजा न करने-वाले की कोई कामना पूरी नहीं होती।

आचमन कर पूजा-गृह के द्वार पर सामान्यार्घ्य स्थापित करे। मातृका, ऋष्यादि न्यास कर मूल-मन्त्र से कर-शोधन करे। फिर कर-न्यास, व्यापक न्यास कर अङ्ग-न्यास करे। ताल-त्रय से दिशाओं का बन्धन कर प्राणायाम-त्रय करे। इष्ट-देवता का ध्यान कर उनकी पूजा कर मन्त्र-जप करे। यही विधि सभी के पूजन की है। सोलह उपचारों से 'महा-पूजा' होती है। नित्य-पूजा में दस या पाँच उपचारों का प्रयोग करे। अभाव में गन्ध-पुष्प और ये दोनों न हों, तो मात्र पुष्प से, उसके भी अभाव में पत्तियों से, उनके भी अभाव में अक्षत या जल से, सबके अभाव में मानसिक भावना मात्र से पूजा करे किन्तु पूजा-कर्म का लोप न करे। पूजा न करने से सर्व-नाश होता है और पग-पग पर आपत्ति का सामना करना पड़ता है।

पुरश्चरण की विधि—'काली-तन्त्र', दूसरे पटल में बताया है कि नियम-पूर्वक पवित्र रहते हुए दिन में हविष्य भोजन करे और मन्त्र का एक लाख जप करे। रात्रि में ताम्बूल मुख में रख शय्या पर एक लाख जप करे। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध होता है, तभी उसका प्रयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं।

उक्त बात 'तन्त्र-सार' में भी कही गई है किन्तु आधुनिक विद्वान् यहाँ 'दो लाख' जप के उल्लेख से दिवा-रात्रि के भेद से जप कर पुरश्चरण करना मानते हैं, जैसा कि 'तन्त्रसार' में अनिरुद्ध-सरस्वती के प्रसङ्ग में निर्दिष्ट हुआ है। किन्तु ऐसा नहीं है। 'तन्त्रसार' के लेखक ने भी एक लाख जप से ही पुरश्चरण माना है। उन्होंने सिद्धेश्वरीय वचन उद्धृत किया है, जिसके अनुसार अनिरुद्ध - सरस्वती के पुरश्चरण में जो दो लाख जप से पुरश्चरण बताया है, वह पशु-कल्प और वीर-कल्प के भेदानुसार है। 'श्यामा-रहस्य' में उद्धृत 'स्वतन्त्र तन्त्र' के अनुसार 'दिन में पवित्र होकर, हविष्य - भोजन कर एक लाख जप करे। तब उसका दशांश हवि द्वारा होम करे। तीर्थ-जल, दुग्ध, हवि, मधु या चीनी-मिले जल से तर्पण कर तर्पण के दशांश जल से अभिषेक करे। उसके दशांश हविष्यान्न द्वारा काली-तन्त्रज्ञ विप्रों को भोजन कराये। गुरु को दक्षिणा दे। यह पाशव कल्प है।

'निरुत्तर तन्त्र' के चौथे पटल में भी लिखा है कि 'दिन में सदा हविष्य - भोजन कर पवित्र रहते हुये एक लाख जप करे। अग्नि में दशांश हवन कर उसका दशांश तर्पण करे। उसका दशांश अभिषेक तीर्थ-जल से कर, उसके दशांश हविष्यान्न द्वारा द्विजों को भोजन करावे। यह पाशव कल्प कहा गया है। वीर-कल्प में रात्रि का एक याम बीतने पर अपने 'कुल' का चिन्तन करना चाहिए।' इसके बाद वहीं लिखा है कि 'तत्व-चिन्ता-परायण साधक 'कुलाकुल' एक लाख जप करे। उसके दशांश शुद्धि-युक्त आसव से अग्नि में हवन करे। उसका दशांश तर्पण शुद्धि-युक्ति सुधा से करे। तीर्थ-जल से उसका दशांश अभिषेक करे। उसके दशांश द्विजों को कुल-द्रव्यों द्वारा भक्ति-पूर्वक भोजन कराये। आदि और अन्त में कुल-शक्तियों को भोजन कराये। उनके अभाव में शक्ति मात्र का पूजन करे। पुरश्चरण-काल में शक्ति की पूजा न करने से साधक का सारा पूजन, जप, होमादि अभिचार - वत् निरर्थक होता है।

वहीं, पहले पटल में लिखा है कि दिन में पशु-भाव से और रात्रि में कौलिक भाव से—इस प्रकार पुरश्चर्या भाव-भेद से दो प्रकार की होती है। अतः पाशव-कल्प में पुरश्चरण दिन में एक लाख जप से होता है—ऐसा सिद्धान्त स्पष्ट है। यदि 'काली-तन्त्र' के अनुसार पाशव कल्प में भी दिन और रात्रि के भेद से दो लाख जप द्वारा पुरश्चरण करना माना जाय, तो उसी तन्त्र में कहा है कि विविध प्रकार के आचारों का इधर-उधर पालन नहीं करना चाहिए। भूत-हिंसा—विशेष कर पशु - हिंसा नहीं करनी चाहिये। बलि-दान के अतिरिक्त हिंसा सर्वत्र निन्दनीय है।' इस प्रकार विभिन्न आचारों का निषेध होने से वैसा मानना तर्क-सम्मत नहीं होगा। 'कर्पूरादि-स्तव' में भी लिखा है कि 'माता के चरणों का ध्यान करने में निपुण साधक दिन में हविष्य-भोजन करता हुआ एक लाख जप करता है। परन्तु रात्रि में रति-क्रीड़ानन्दपूर्वक नग्न साधक काम-नाशक शिव के समान मन्त्र का एक लाख जप करता है।'—इस कथन में रात्रि-पुरश्चरण वीर-कल्प में ही बताया गया है।

रति-क्रीडानन्द-पूर्वक मन्त्रों की जप-विधि का वर्णन 'तन्त्रसार' में हुआ है। उसे वहाँ देख लेना चाहिए।

२६ अथ काली-शतनाम-स्तोत्रम्, शिव उवाच—

कराल-वदना काली कामिनी कमला कला। क्रियावती कोटराक्षी कामाख्या काम - सुन्दरी।
कपोला च कराला च काशी कात्यायनी कुहुः। कङ्काली काल - दमनी करुणा कमलार्चिता।
कादम्बरी काल-हरा कौतुका कारण-प्रिया। कृष्णा कृष्ण-प्रिया कृष्ण-पूजिता कृष्ण-वल्लभा।
कृष्णाऽपराजिता कृष्ण-प्रिया च कृष्ण-रूपिणी। कालिका काल-रात्रिश्च कुलजा कुल-पण्डिता।
कुल-धर्म - प्रिया कामा काम्य-कर्म - विभूषिता। कुल - प्रिया कुल-रता कुलीन-परि पूजिता।
कुलज्ञा कमला पूज्या कैलास-नग-भूषिता। कूटजा केशिनी कामा कामदा काम - पण्डिता।
करालास्या च कन्दर्प - कामिनी रूप - शोभिता। केलाम्बिका केल-रता केलिनी केल-भूषिता।
केशवस्य प्रिया केशा काश्मीरा केशवार्चिता। कामेश्वरी काम - रूपा काम-दान - विभूषिता।
काल - हन्त्री कूर्म - मांस - प्रिया कूर्मादि - पूजिता। केलिनी करकाकारा कट-कूर्म-निषेविणी।
कट - केशर - मध्यस्था कटकी कटकार्चिता। कट - प्रिया कट - रता कट - कूर्म - निषेविणी।
कुमारी-पूजन - रता कुमारी - गण - सेविता। कुलाचार - प्रिया कौल - प्रिया कुल-निषेविणी।
कुलीना कुल-धर्मज्ञा कुल-भीति-विमर्दिनी। काम-धर्म-प्रिया काम्या नित्या काम-स्वरूपिणी।
काम-रूपा काम-हरा काम - मन्दिर - पूजिता। कामागार-स्वरूपा च कामाख्या काम-भूषिता।
क्रिया-भक्ति-रता काम्या काञ्चनी चैव कामदा। कोल-पुष्पाम्बरा कोला निष्कोला कलहान्तका।
कौषिकी केतकी कुन्ती कुन्तलादि-विभूषिता।

इत्येवं भृणु चार्वङ्गि ! रहस्यं सर्व-मङ्गलं। यः पठेत् परया भक्त्या स शिवो नात्र संशयः।
शत-नाम-प्रसादेन किं न सिद्धयति भू-तले। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः।
रहस्य-पठनाद् देवि ! सर्वे च विगत-ज्वराः। त्रिषु लोकेषु विश्वेशि ! सत्यं सत्यमतः परं।
नास्ति नास्ति महा-माये ! तन्त्र-मध्ये कथञ्चन। क्रियया च विना देवि ! विना भक्त्या महेश्वरि !
प्रसन्ना स्यात् करालास्या स्तव-पाठाद् दिगम्बरा। सत्यं वच्मि महेशानि ! अतः पर-तरं न हि।
न गोलके न वैकुण्ठे न च कैलास - मन्दिरे। अतः पर-तरा विद्या स्तोत्रं कवचमेव च।
त्रि-लोकेषु जगद्धात्रि ! नास्ति कदाचन। रात्रावपि दिवा-भागे सन्ध्यायां वा सुरेश्वरि !
प्रजपेद् भक्ति - भावेन रहस्यं स्तवमुत्तमं। शत - नाम - प्रसादेन मन्त्र - सिद्धिः प्रजायते।
कुज-वारे चतुर्दश्यां निशा-भागे पठेत् तु यः। स कृती सर्व-शास्त्रज्ञः स कुलीनः सदा शुचिः।
स कलज्ञः स कालज्ञः स धर्मज्ञो मही तले। रहस्य - पठनात् कोटि - पुरश्चरणजं फलं।
प्राप्नोति देव - देवेशि ! सत्यं परम सुन्दरि ! स्तव-पाठाद् वरारोहे ! किं न सिद्धयति भू-तले ?
अणिमाद्यष्ट-सिद्धीशो भवत्येव न संशयः। रात्रौ विल्व - तलेऽश्वत्थ - मूलेऽपराजिता-तले।
प्रपठेत् कालिका-स्तोत्रं यथा-शक्त्या महेश्वरि ! शत-वार - प्रपठान्मन्त्र - सिद्धिर्भवेद् ध्रुवं।

॥ इति मुण्ड-माला-तन्त्रे अष्टम-पटले काली-शत-नाम-स्तोत्रं समाप्तम् ॥

२७ अथ महा-विद्या-स्तोत्रं, शिव उवाच—

दुर्लभं तारिणी - मार्गं दुर्लभं तारिणी-पदं। मन्त्रार्थं मन्त्र - चैतन्यं दुर्लभं शव - साधनं।
श्मशान-साधनं योनि-साधनं ब्रह्म - साधनं। क्रिया - साधनकं भक्ति - साधनं मुक्ति - साधनं।
स्तव - प्रसादाद् देवेशि ! सर्वाः सिद्धयन्ति सिद्धयः।

नमस्ते चण्डिके, चण्डि, चण्ड-मुण्ड - विनाशिनि ! नमस्ते कालिके, काल-महा-भय-विनाशिनि !
शिवे ! रक्ष जगद्धात्रि ! प्रसीद हर - वल्लभे ! प्रणमामि जगद्धात्रीं जगत्-पालन-कारिणीं ।
जगत्-क्षोभ-करीं विद्यां जगत् सृष्टि-विधायिनीं । करालां विकटां घोरां मुण्ड-माला-विभूषितां ।
हरार्चितां हराराध्यां नमामि हर - वल्लभां । गौरीं गुरु - प्रियां गौर - वर्णालङ्कार - भूषितां ।
हरि-प्रियां महा-मायां नमामि ब्रह्म - पूजितां । सिद्धां सिद्धेश्वरीं सिद्ध - विद्या - धर-गणैर्युतां ।
मन्त्र-सिद्धि-प्रदां योनि-सिद्धिदां लिङ्ग-शोभितां । प्रणमामि महा-मायां दुर्गां दुर्गति - नाशिनीं ।
उग्रामुग्र - मयीमुग्र - तारामुग्र - गणैर्युतां । नीलां नील - घन - श्यामां नमामि नील - सुन्दरीं ।
श्यामाङ्गीं श्याम-घटितां श्याम - वर्ण - विभूषितां । प्रणमामि जगद्धात्रीं गौरीं सर्वार्थ-साधिनीं ।
विश्वेश्वरीं महा-घोरां विकटां घोर-नादिनीं । आद्यामाद्य - गुरोराद्यामाद्य - नाथ - प्रपूजितां ।
श्रीदुर्गां धनदामन्न - पूर्णां पद्मां सुरेश्वरीं । प्रणमामि जगद्धात्रीं चन्द्र - शेखर - वल्लभां ।
त्रिपुरां सुन्दरीं बालामबला-गण - भूषितां । शिव - दूतीं शिवाराध्यां शिव - ध्येयां सनातनीं ।
सुन्दरीं तारिणीं सर्व - शिवा-गण - विभूषितां । नारायणीं विष्णु-पूज्यां ब्रह्म-विष्णु-हर - प्रियां ।
सर्व-सिद्धि - प्रदां नित्यामनित्यां गुण-वर्जितां । सगुणां निर्गुणां ध्येयामर्चितां सर्व - सिद्धिदां ।
विद्यां सिद्धि-प्रदां विद्यां महा - विद्यां महेश्वरीं । महेश - भक्तां माहेशीं महा-काल-प्रपूजितां ।
प्रणमामि जगद्धात्रीं शुम्भासुर - विमर्दिनीं । रक्त - प्रियां रक्त - वर्णां रक्त - बीज - विमर्दिनीं ।
भैरवीं भुवनां देवीं लोल - जिह्वां सुरेश्वरीं । चतुर्भुजां दश - भुजामष्टादश - भुजां शुभां ।
त्रिपुरेशीं विश्व-नाथ-प्रियां विश्वेश्वरीं शिवां । अट्टहासामट्टहास-प्रियां धूम्र - विनाशिनीं ।
कमलां छिन्न-भालां च मातङ्गीं सुर-सुन्दरीं । षोडशीं विजयां भीमां धूमाभां च बगलामुखीं ।
सर्व - सिद्धि-प्रदां सर्व-विद्या - मन्त्र - विशोधिनीं । प्रणमामि जगत्-तारां सारां च मन्त्र-सिद्धये ।
इत्येवं च वरारोहे ! स्तोत्रं सिद्धि-करं परं । पठित्वा मोक्षमाप्नोति सत्यं वै गिरि - नन्दिनि !
कुज - वारे चतुर्दश्याममायां जीव - वासरे । शुक्रे निशि-गते स्तोत्रं पठित्वा मोक्षमाप्नुयात् ।
त्रि-पक्षे मन्त्र-सिद्धिः स्यात् स्तोत्र-पाठाद्धि शङ्करि ! चतुर्दश्यां निशा-भागे शनि-भौम-दिने तथा ।
निशा - मुखे पठेत् स्तोत्रं मन्त्र - सिद्धिमवाप्नुयात् । केवलं स्तोत्र-पाठाद्धि मन्त्र - सिद्धिरनुत्तमा ।
जागर्ति सततं चण्डि ! स्तोत्र-पाठाद् भुजङ्गिनी, ॥ इति मुण्ड-माला-तन्त्रे एकादश-पटले महा-विद्या-स्तोत्रं ॥

२८ अथ महा-विद्या-कवचं

सदा - शिव ऋषिर्देवि ! उष्णिक् छन्दः उदाहृतं । विनियोगश्च देवेशि ! ततश्च मन्त्र-सिद्धये ।
मस्तकं पार्वती पातु पातु पञ्चानन-प्रिया । केशं मुखं पातु चण्डी भारती रुधिर - प्रिया ।
कण्ठं पातु स्तनं पातु कपालं गण्डमेव हि । काली कराल - वदना विचित्रा स्वर - घण्टिनी ।
वक्षो - मूलं नाभि - मूलं दुर्गा त्रिपुर - सुन्दरी । दक्ष - हस्तं पातु तारा सर्वाणी सर्वमेव च ।
विश्वेश्वरी पृष्ठ - देशं नेत्रं पातु महेश्वरी । हृत् - पद्मं कालिका पातु उग्र-तारा नभो-गतं ।
नारायणी गुह्य - देशं मेढ्रं मेढ्रेश्वरी तथा । पाद - युग्मं जया पातु सुन्दरी चांगुलीषु च ।
षट् - पद्म - वासिनी पातु सर्व - पद्मं निरन्तरं । इडा च पिङ्गला पातु सुषुम्ना पातु सर्वदा ।
धनं धनेश्वरी पातु अन्न-पूर्णा सदाऽवतु । बाह्यं बाह्येश्वरी पातु नित्यं मां चण्डिकाऽवतु ।
जीवं मां पार्वती पातु मातङ्गी पातु सर्वदा । छिन्ना धूमा च भीमा च भये पातु जले वने ।
कौमारी चैव वाराही नारसिंही यशो मम । पातु नित्यं भद्र - काली श्म शानालय-वासिनी ।

उदरे सर्वदा पातु शर्वाणी सर्व - मङ्गला । जगन्माता जयं पातु नित्यं कैलास - वासिनी ।
शिव - प्रिया सुतं पातु सुतां पर्वत - नन्दिनी । त्रैलोक्यं पातु वगला भुवनं भुवनेश्वरी ।
सर्वाङ्गं सर्व-निलया पातु नित्यं च पार्वती । चामुण्डा पातु मे रोम - कूपं सर्वार्थ-साधिनी ।
ब्रह्माण्डं मे महा-विद्या पातु नित्यं मनोहरा । लिङ्गं लिङ्गेश्वरी पातु महा-पीठं महेश्वरी ।
गौरी मे सन्धि - देशं च पातु वै त्रिपुरेश्वरी । सुरेश्वरी सदा पातु श्मशाने च शवेऽवतु ।
कुम्भके रेचके चैव पूरके काम - मन्दिरे । कामाख्या काम - निलय पातु दुर्गा महेश्वरी ।
डाकिनी काकिनी पातु नित्यं मे शाकिनी तथा । हाकिनी लाकिनी पातु राकिनी पातु सर्वदा ।
ज्वालामुखी सदा पातु मुख - मध्ये शिवाऽवतु । तारिणी विभवे पातु भवानी च भवेऽवतु ।
त्रैलोक्य - मोहिनी पातु सर्वाङ्गं विजनेऽवतु । राज - कुले महा - घाते संग्रामे शत्रु - सङ्कटे ।
प्रचण्डा साधकं मां च पातु भैरव - मोहिनी । श्रीराज - मोहिनी पातु राज - द्वारे विपत्तिषु ।
सम्पत् - प्रदा भैरवी च पातु बाला बलं मम । नित्यं मां शम्भु - वनिता पातु मां त्रिपुरान्तका ।
इत्येवं कथितं देवि ! रहस्यं सार्व - कालिकं । भुक्तिदं मुक्तिदं सौख्यं सर्व-सम्पत् - प्रदायकं ।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय साधकेन्द्रो भवेद् भुवि । कुज-वारे चतुर्दश्याममायां मन्द - वासरे ।
गुरौ गुरुं समभ्यर्च्य यः पठेत् साधकोत्तमः । स याति भवनं देव्याः सत्यं सत्यं न संशयः ।
एवं यदि वरारोहे ! पठेद भक्ति - परायणः । मन्त्र-सिद्धिर्भवेत् तस्य चाचिराच्नात्र संशयः ।
सत्यं लक्ष-पुरश्चर्या-फलं प्राप्य शिवां व्रजेत् । शिव-मार्गं राज - मार्गं प्राप्य जीवः शिवो भवेत् ।
पठित्वा कवचं स्तोत्रं मुक्तिमाप्नोति निश्चितं । पठित्वा कवचं स्तोत्रं दश - विद्यां यजेद् यदि ।

विद्या-सिद्धिर्मन्त्र - सिद्धिर्भवत्येव न संशयः । तदैव ताम्बूले सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
शव - सिद्धिश्चिता - सिद्धिर्दुर्लभा धरणी-तले । अयत्नात् सुलभ - सिद्धिस्ताम्बूलान्नात्र संशयः ।
निशा - मुखे निशायां च महा-काले निशान्तके । पठेद् भक्त्या महेशानि ! गाणपत्यं लभेत् तु सः ।

॥ इति मुण्ड-माला-तन्त्रे, एकादश-पटले मन्त्र-सिद्धि-स्तोत्र-कवचं नाम महा-विद्या-कवचम् ॥

श्मशान - कालिका आदि की पूजा के लिए 'तन्त्र - सार' में देखें ।

२६ अथ श्मशान-कालिका-कवचं—

कैलास-शिखरारूढं शङ्करं वरदं शिवं । देवी पप्रच्छ सर्वज्ञं सर्व-देव - महेश्वरं ।
भगवन्, सर्व - देवेश ! देवानां भोगद, प्रभो ! प्र - ब्रूहि मे महा-देव ! गोप्यं यद्यपि च प्रभो !
शत्रूणां येन नाशः स्यादात्मनो रक्षणं भवेत् । परमैश्वर्यमतुलं लभेद् येन हि तद् वद ।

श्री भैरव उवाच—वक्ष्यामि ते महा-देवि ! सर्व-धर्म-विदां वरे !

अद्भुतं कवचं देव्याः सर्व-काम-प्रसाधकं । विशेषतः शत्रु-नाश-करं रक्षा-करं नृणां ।
सर्वानिष्ट - प्रशमनमभिचार - विनाशकं । सुखदं भोगदं चैव वशीकरणमुत्तमं ।

शत्रु-सङ्घाः क्षयं यान्ति भवन्ति व्याधि-पीडिताः । दुःखिनो ज्वरिणश्चैव स्वाभीष्ट-प्रच्युतास्तथा ।
अस्य श्रीकालिका-कवचस्य भैरव ऋषिर्गायत्री छन्दः, श्रीकालिका देवता, शत्रु-सङ्घ-नाशे विनियोगः ।
ॐ ध्याये कालीं महा-मायां त्रिनेत्रां बहु-रूपिणीं । चतुर्भुजां लोल-जिह्वां पूर्ण-चन्द्र-निभाननां ।
नीलोत्पल-दल - प्रख्यां शत्रु - सङ्घ - विदारिणीं । नर-मुण्डं तथा खड्गं कमलं च वरं तथा ।

बिभ्राणां रक्त-वदनां दंष्ट्रालीं घोर - रूपिणीं । अट्टाट्ट - हास - निरतां सर्वदा च दिगम्बरीं ।
शवासन-स्थितां देवीं मुण्ड-माला-विभूषितां ।।

इति ध्यात्वा महा-देवीं ततस्तु कवचं पठेत्--

ॐ कालिका घोर - रूपाढ्या सर्व-काम-प्रदा शुभा । सर्वतः संस्तुता देवी शत्रु-नाशं करोतु मे ।
ह्रींह्रीं-स्वरूपिणी चैव ह्रांह्रां हुं-रूपिणी तथा । होंहां क्षौंक्षौं-स्वरूपा सा सदा शत्रून् प्रशास्तु मे ।
श्रीं ह्रीं ऐं रूपिणी देवी भव - बन्ध - विमोचनी । हसकलह्रीं स्वरूपाऽसौ रिपून् सा हन्तु सर्वदा ।
यथा शुम्भो हतो दैत्यो निशुम्भश्च महाऽसुरः । वैरि-नाशाय वन्दे तां कालिकां शङ्कर-प्रियां ।
ब्राह्मी शैवी वैष्णवी च वाराही नार-सिंहिका । कौमार्यैन्द्री च चामुण्डा खादयन्तु मम द्विषः ।
सुरेश्वरी घोर-रूपा चण्ड - मुण्ड - विनाशिनी । मुण्ड-माला-वृताङ्गी च सर्वतः पातु मां सदा ।

ह्रीं ह्रीं कालिके, घोर-दंष्ट्रे, रुधिर-प्रिये, रुधिर-रुचिर-पूर्ण-वक्त्रे, रुधिरावृत-स्तनि ! ममामुक-शत्रून् खादय खादय, छेदय छेदय, मारय मारय, भिन्धि भिन्धि, छिन्धि छिन्धि, उच्चाटय उच्चाटय, द्रावय द्रावय स्वाहा । वां वीं कालिकायै मदीय-शत्रुं समर्पयामि स्वाहा । ॐ जय जय, किरि किरि, किटि किटि, कटट् कटट, मर्दय मर्दय, मोहय मोहय । हर हर, ममामुक-रिपून् ध्वंसय ध्वंसय, भक्ष भक्ष, त्रोटय त्रोटय, यातुधानि ! चामुण्डे ! सर्व-जनान् राज्ञो राज-पुरुषान् स्त्रियो मम वश्याः कुरु कुरु, तनु तनु । धान्यं धन-मश्वान् गजान् रत्नानि दिव्य-कामिनीः पुत्रान् राज-श्रियं देहि देहि । यच्छ यच्छ, क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्वाहा ।

इत्येतत् कवचं दिव्यं कथितं शम्भुना पुरा । ये पठन्ति सदा तेषां ध्रुवं नश्यन्ति शत्रवः ।
वैरिणः प्रलयं यान्ति व्याधिताश्च भवन्ति हि । धन-हीनाः पुत्र-हीनाः शत्रवस्तस्य सर्वदा ।
सहस्र-पठनात् सिद्धिः कवचस्य भवेत् तदा । ततः कार्याणि सिद्धयन्ति तद्धि शङ्कर-भाषितं ।
श्मशानाङ्गारमादाय चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः । पादोदकेन पिष्ट्वा च लिखेल्लौह-शलाकया ।
भूमौ शत्रून् हीन-रूपानुत्तरा-शिरसस्तथा । हस्तं दत्वा तद् - हृदये कवचं तु स्वयं पठेत् ।
शत्रोः प्राण - प्रतिष्ठां तु कुर्यान्मन्त्रेण मन्त्र-वित् । हन्यादस्त्र-प्रहारेण शत्रुर्गच्छेद् यम-क्षयं ।
ज्वलिताङ्गार - तापेन ज्वरी भवति तादृशः । प्रोज्झनैर्वाम - पादेन दरिद्रो भवति ध्रुवं ।
वैरि-नाश - करं प्रोक्तं कवचं वश्य-कारकं । परमैश्वर्यदं चैव पुत्र - पौत्रादि - वृद्धिदं ।
प्रभात-समये चैव पूजा - काले विशेषतः । सायंकाले तथा पाठात् सिद्धिर्भवेद् ध्रुवं ।
शत्रुरुच्चाटनं याति देशाच्च विच्युतो भवेत् । पश्चात् किङ्करतामेति सत्यं सत्यं न संशयः ।
शत्रु-नाश-करे, देवि, सर्व - सम्पत्-करे, शुभे ! सर्व-देव-स्तुते, देवि, कालिके ! त्वां नमाम्यहं ।

।। इति रुद्र-यामले वैरि-हरणं नाम श्मशान-कालिका-कवचं समाप्तम् ।।

शाक्त-प्रशंसा--'मुण्ड-माला तन्त्र', दूसरे पटल के अनुसार तीनों लोकों में शाक्त से बढ़कर कोई नहीं है। सौर, गाणपत्य और वैष्णवों के बाद शाक्त--क्रमशः ये श्रेष्ठ-तर हैं। शाक्त के बाद कोई व्यक्ति नहीं है। शाक्त ही साक्षात् शङ्कर और ब्रह्म-स्वरूप है। जिसने काली, तारा, भुवनेश्वरी, षोडशी, मातङ्गी, धूम्रा और बगलामुखी की आराधना कर ली है, वह शिव है, इसमें सन्देह नहीं। शाक्तों का परम पद अत्यन्त गोपनीय है। जो उसे जानता है, वह शिव ही है। ब्रह्मादि के द्वारा अर्चित चरण-कमलों का जो सदा आनन्द से भजन करता है, वह शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करता है।

तीसरे पटल में लिखा है कि पार्वती के चरण-युगल की आराधना से शाक्त उनका सेवक हो जाता है। भोग और मोक्ष शाक्तों के लिए सहज हो जाते हैं। जो अधम लोग शाक्तों की निन्दा करते हैं, उनके रक्त का पान भैरवियाँ करती हैं। भैरव और भैरवियाँ सदा पापियों का संहार करती हैं। जो बहु-वादी शाक्तों की निन्दा या हानि करते हैं, उनके शिरों को पार्वती काट डालती हैं। शाक्तों से उत्तम तीनों लोकों में कोई नहीं है। शाक्त को साक्षात् त्रिनेत्र, चन्द्र-शेखर, शङ्कर ही समझना चाहिए। वह गङ्गा-धर होकर पृथ्वी-मण्डल पर विहार करता है।

चौथे पटल में देवी से शिव कहते हैं कि 'मेरे अंश-भूत प्राणी 'शैव' हैं और तुम्हारे अंश-भूत 'शाक्त', इसमें सन्देह नहीं। सहस्रों वर्ष बाद 'शैव' और शक्ति-परायण 'शाक्त' शाङ्कर रूप में जिस किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डाल कुल में उत्पन्न होंगे। ये शाक्त मनुष्य न होकर देव-रूप ही होंगे। केवल संसारी लोग ही उन्हें मनुष्य-रूप में देखेंगे।

सातवें पटल में भगवान् शिव का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शद्रादि जातियों द्वारा 'वाम-मार्ग' के अनुसार ही जप-पूजन करना चाहिए। ऐसे ब्राह्मणादि सभी शाक्त साक्षात् शङ्कर-स्वरूप ही होंगे।

'निर्वाण तन्त्र', तीसरे पटलके अनुसार सभी द्विज 'शाक्त' ही हैं। उनमें न कोई शैव है, न वैष्णव क्योंकि वे सभी परमाक्षरा गायत्री देवी की उपासना करते हैं।

'गन्धर्व-तन्त्र', दूसरे पटल के अनुसार शक्ति-उपासना में प्रवृत्त होने के बाद अन्य उपासना नहीं करनी चाहिए। भगवती त्रिपुरा के प्रसङ्ग में निर्देश है कि त्रिपुरा की आराधना करने पर अन्य किसी की आराधना न करे क्योंकि किसी अन्य का स्मरण करने से योगिनी का शाप लगता है।

सातवाँ परिच्छेद

कुमारी-पूजा की विधि और उसका फल

'कुमारी' का निरूपण—'रुद्र-यामल', उत्तर खण्ड के छठे पटल के अनुसार आयु के अनुसार कन्याओं के नाम बताये हैं। यथा—

१ वर्ष—सन्ध्या, २ वर्ष—सरस्वती, ३ वर्ष—त्रिधा मूर्ति, ४ वर्ष—कालिका, ५ वर्ष—सुभगा, ६ वर्ष—उमा, ७ वर्ष—मालिनी, ८ वर्ष—कुब्जिका, ९ वर्ष—काल-सन्दर्भा, १० वर्ष—अपराजिता, ११ वर्ष—रुद्राणी, १२ वर्ष—भैरवी, १३ वर्ष—महा-लक्ष्मी, १४ वर्ष—पीठ-नायिका, १५ वर्ष—क्षेत्रज्ञा, १६ वर्ष—अम्बिका।

जब तक 'पुष्प' (रज) दर्शन न हो, तब तक की कन्या का प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक क्रमशः वृद्धि-क्रम से पूजन करना चाहिए।

'वृहन्नील तन्त्र' में भी उक्त १६ नाम दिए हैं। वहाँ १४ वर्ष की कन्या का नाम केवल 'नायिका' और १६ वर्षीया का नाम 'चंचिका' बताया है।

'कुब्जिका तन्त्र' में विशेष बात यह बताई है कि ५ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक की कन्या 'कुमारी' कहलाती है, जो अपने रूप का दर्शन देती है। ६ वर्ष से लेकर ९ वर्ष तक की 'कुमारी' साधकों के अभीष्ट को पूर्ण करती है। ८ वर्ष से लेकर १३ वर्ष तक की 'कुमारी' को 'कुलजा' समझना चाहिए और १० वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक की 'कुमारी' को 'युवती' समझना चाहिए तथा तदनुरूप ही उनकी पूजा करनी चाहिए।

जो साधक कुमारी को अन्न, वस्त्र और जल प्रदान करता है, उसे वह दिया हुआ अन्न मेरु पर्वत के परिमाण में, वस्त्र कोटि-सहस्र वर्ष के लिए और जल सागर के परिमाण में प्राप्त होता है तथा शिव-लोक में उसे उत्तम स्थान मिलता है। कुमारी को इस संसार में पूजा-सामग्री देने से देवता सन्तुष्ट होकर पुत्र-रूप में साधक को कृतार्थ करता है।

'विश्व-सार' के अनुसार ८ वर्ष की कन्या 'गौरी', ९ वर्ष की 'रोहिणी', १० वर्ष की कन्यका, और उससे अधिक आयुवाली 'महा-माया' कहलाती है। १२ वर्ष से लेकर २० वर्ष तक की कन्या 'सुकुमारा' कहलाती है।

'कुमारी'-पूजा का फल—'योगिनी-तन्त्र', पूर्व-खण्ड के १६वें पटल के अनुसार सभी जातियों में उत्पन्न कन्या पूजनीया है। 'कुमारी'-पूजन में जाति का विचार नहीं करना चाहिए। जाति-भेद करनेवाला पापी होता है और उसे नरक की प्राप्ति होती है। 'कुमारी' को साक्षात् देवी मानकर बड़ी भक्ति के साथ उसकी पूजा करनी चाहिये। 'कुमारी' सर्व-विद्या-स्वरूपा है, इसमें सन्देह नहीं। वेश्या-कुल में उत्पन्न कन्या भाग्य से मिलती है। यदि मिल जाय, तो यत्नपूर्वक स्वर्ण, रौप्य आदि से सहर्ष उसका पूजन करे। इससे साधक को महा-सिद्धि प्राप्त होती है।

वहीं 'कुमारी'-पूजा के स्थान की महिमा बताई है कि जिस स्थान में 'कुमारी' की पूजा होती है, वह परम पवित्र हो जाता है। उसके आस-पास पाँच कोश तक की भूमि महान् पुण्य-तीर्थ जैसी होती है।

'यामल' के अनुसार महा-पर्वों में, विशेष कर महा-नवमी के दिन, कुमारी की पूजा करनी चाहिये। दिव्य, वीर या पशु किसी भी भाव का साधक हो, कुमारी-पूजा करने से उसे विशेष लाभ होता है। विभिन्न कुल, जाति, देश में उत्पन्न हो, गुणवती हो या गुण-हीना हो, दो वर्ष से लेकर आठ वर्ष तक की सभी कन्याओं की पूजा करने से सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं।

कुमारी-पूजन और कुमारी-भोजन से एक, दो, तीन आदि कितने भी बीजों का मन्त्र हो, उसके जप का पूरा फल मिलता है। कुमारियों को पुष्प, फल, सुगन्धि, बच्चों को प्रिय नैवेद्यादि देकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए बालोचित खेल-कूद, कथा-कहानी आदि से उनका मनोरञ्जन करे, तो उनकी प्रसन्नता के प्रभाव से साधक सिद्धियों का स्वामी होता है। कन्या-पूजन से सब प्रकार की समृद्धि मिलती है। कुमारी-पूजन से होम, मन्त्रार्चन, नित्यार्चन आदि सभी अनुष्ठान का फल कोटि-गुणा बढ़ जाता है। अञ्जलि भर कर पुष्प कुमारी पर चढ़ाने से क्षण भर में ही महान् पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। कुमारी को भोजन कराने से तीनों लोकों को भोजन कराने का फल मिलता है।

'काली-तन्त्र', ११वें पटल के अनुसार सभी कर्मों के फल की प्राप्ति के लिए कुमारी - पूजन करना चाहिए।

'रुद्र-यामल', उत्तर-खण्ड के सातवें पटल में कुमारी-पूजन के विषय में बताया है कि महा-पीठ या किसी देवालय में नटी-कन्या, हीन-कन्या, नापित-कन्या, गोपाल-कन्या, ब्राह्मण - कन्या, शूद्र-कन्या, वैद्य-कन्या, वणिक्-कन्या, चाण्डाल-कन्या और सुहृद्-कन्या को आदरपूर्वक ले आए और बड़े आनन्द के साथ मन लगाकर उनकी पूजा करे। कुमारी साक्षात् देवता कही गई है। सरस्वती-रूप में उसकी पूजा सभी श्रेष्ठ लोग करते हैं। शिव - भक्त हों, विष्णु-भक्त हों या किन्हीं भी देवता के भक्त हों, सभी लोग कुमारी-पूजा करते हैं। अतः बुद्धिमान् को कुमारी-पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पूजा करने से साधक को सम्मान मिलता है और उसकी शोभा में वृद्धि होती है। पूजा से धन और भूमि की प्राप्ति होती है। पूजा से ही लक्ष्मी, सरस्वती और तेजस्विता का लाभ होता है। महा-विद्यायें और सभी देवता प्रसन्न होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। कुमारी-पूजा से तीनों लोक वशीभूत होते हैं। उससे परम शान्ति मिलती है और सभी पुण्य कर्मों का यथोक्त फल प्राप्त होता है।

'वृहन्नील तन्त्र' में कहा है कि बड़े सा बड़ा भय, दुर्भिक्ष आदि उत्पात, बुरे स्वप्न, अकाल मृत्यु आदि कुमारी-पूजा के प्रभाव से लोगों को कष्ट नहीं देते। नित्य विधिपूर्वक पूजा करने से सभी विघ्न नष्ट होते हैं और शत्रु-भय, ग्रह-दोष, रोगादि, भूत-प्रेत-सर्पादि की बाधा दूर होती है।

'रुद्र-यामल' में बताया है कि कुमारी-पूजा के साथ जिस भी मन्त्र का अनुष्ठान किया जाता है, वह अभीष्ट फल प्रदान करता है। महा-विद्याओं के मन्त्र की साधना से लोग जीवन्मुक्त होकर अन्त में देवी का सान्निध्य पाते हैं। मधुमती की प्रसन्नता से इस लोक में सुख-सम्पत्ति मिलती है। वाग्भव (ऐं) से शरीर का आरोग्य, माया-बीज (ह्रीं) से अष्ट-सिद्धियाँ, ऐश्वर्य और शत्रुओं पर जय-लाभ होता है। भैरव-बीज से खेचरत्व प्राप्त होता है।

कुमारी-पूजा की विधि—कुमारी (कन्या) को लाकर उसे रत्नालङ्कार, शङ्ख-वस्त्रादि से सुसज्जित करे। तब उसका नाम लेकर उसे वाग्भव (ऐं) बीज से जल प्रदान करे। माया-बीज (ह्रीं) से उसे पाद्य दे अर्थात् उसके पैरों को धोये। लक्ष्मी-बीज (श्रीं) से अर्घ्य दे अर्थात् उसके सिर पर जल

छिड़के। कूर्च-बीज (हूं) से उसके मस्तक में चन्दन लगावे। माया-बीज (ह्रीं) से पुष्प - माला पहनाए। सदाशिव (हौं) मन्त्र से धूप-दीप निवेदित करे। तदनन्तर षडङ्ग-मन्त्रों से पूजन करे, यथा—

'हृदय' को महा-तेजोमय और शुभ-प्रद ध्यान कर नमन करे। फिर दाहना हाथ कुमारी के हृदय पर रखकर 'ऐं ह्रीं श्रीं हूं हंसौः कुल-कुमारिके हृदयाय नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करे। इसके बाद 'शिर' को शुक्ल-वर्ण और सर्व-मय ध्यान कर उस पर हाथ रखे और कहे—'हैं वैं ह्रीं श्रीं ऐं शिरसे स्वाहा।' तब शिखा-मध्य को कृष्ण-वर्ण और नीलाञ्जन-वत् ध्यान कर कुमारी-कुल - सिद्धि के लिए 'ॐ श्रीं शिखायै वषट्' इस मन्त्र का न्यास करे। इसके बाद कवच-मध्य (दोनों भुजाओं के मध्य-भाग) को बल-युक्त, अति तेजस्वी, बाल सूर्य के समान रक्त-वर्ण और अति सुन्दर ध्यान कर 'ऐं कुल - वागीश्वरि कवचाय हुं' से न्यास करे। तब तीनों नेत्रों को महा-प्रभा-युक्त, रक्त-वर्ण और कोटि सूर्यों जैसे प्रकाश से युक्त ध्यान कर उनमें 'ऐं कुलेश्वरि नेत्र-त्रयाय वौषट्' से न्यास करे। अन्त में बाँयें हाथ को हथेली में दायें हाथ की मध्यमा-तर्जनी से दो बार ताली बजाकर, महाकाश से उत्पन्न कोटि-सूर्यों के उग्र तेज-जैसे शब्द की भावना करते हुए 'ह्रीं अस्त्राय फट्' का न्यास करे।

तदनन्तर कुमारी के शरीर में सपरिवार बाल-भैरव का ध्यान कर क्रमशः पूजन करे। यथा—'एते गन्ध-पुष्पे ॐ सपरिवाराय बाल-भैरवाय नमः। एते गन्ध-पुष्पे ऐं सिद्ध-जयाय पूर्व-वक्त्राय नमः, ऐं जयायोत्तर-वक्त्राय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं कुब्जिके पश्चिम-वक्त्राय नमः, ऐं कालिके दक्ष-वक्त्राय नमः। श्रीं भास्कराय नमः।'

इसी प्रकार क्रमशः 'दिक्-पालेभ्यः, वीर-भद्रायै, महा-कन्यायै, कौलिन्यै, कुल-कामिन्यै, अष्टादश-भुजायै, कालयै और चण्ड-दुर्गायै' की पूजा करे।

अब भक्ति-पूर्वक विविध प्रकार का नैवेद्य समयानुसार लाकर कुमारियों को निवेदित करे। उनके भोजन कर चुकने पर उन्हें जल पिलाये। फिर जप कर जप-फल उन्हें समर्पित कर स्तोत्र-पाठ करे। यथा—

अथ कुमारी-स्तोत्रम्। भैरव्युवाच—

देवेन्द्रादय इन्दु-कोटि-किरणां वाराणसी-वासिनीं, विद्यां वाग्भव-कामिनीं त्रि-नयनां सूक्ष्म-क्रिया-गामिनीम्।
चण्डोद्वेग-निकृन्तनीं त्रि-जगतां धात्रीं कुमारीं वराम्, मूलाम्भोरुह-वासिनीं शशि-मुखीं सम्पूजयन्ति श्रियै ॥१
भाव्यां देव-गणैः शिवेन्द्र-यतिभिर्मोक्षार्थिभिर्बालिकाम्, सन्ध्यां नित्य-गुणोदयां द्विज-गण-श्रेष्ठोदयाश्वारुहाम्।
शुक्लाभां परमेश्वरीं शुभ-करीं भद्रां विशालाननाम्, गायत्रीं गण-मातरं दिन-गतिं कृष्णां च वृद्धां भजे ॥२
बालां बालक-पूजितां गुण-युतां विद्या-वतां मोक्षदाम्, धात्रीं शुक्ल-सरस्वतीं सुर-वरां वाग्वादिनीं चण्डिकाम्।
स्वाधिष्ठान-हर-प्रियां प्रिय-करीं वेदान्त-विद्या-प्रदाम्, नित्यं मोक्ष-हिताय योग-वपुषा चैतन्य-रूपां भजे ॥३
नाना-रत्न-समूह-निर्मित - गृहे पूज्यां सुरैर्बालिकाम्, वन्दे नन्दन-कानने मनसि सं-सिद्धान्त-बीजात्मके।
अर्थं देहि निरर्थकाय वपुषे हित्वा कुमारी-कलाम्, मह्यं मातृ-कुमारिके च त्रिविधा मूर्त्या च तेजो-मयी ॥४
हालाहल-करालिकां कुल-पथोल्लासैक-बीजोद्वहाम्, मांसामोद-करालिनीं हि भजतां कामातिरिक्त-प्रदाम्।
बालोऽहं वटुकेश्वरस्य चरणाम्भोजाश्रितोऽहम्, सदा हित्वा बाल-कुमारिके! शिरसि शुक्लाम्भोरुहे सम्भजे ॥५
सूर्याह्लाद-बलाकिनीं कलि-महा-पापादि-तापापहाम्, तेजोगां भुवि सूर्यगां भय-हरां तेजो-मयीं कालिकाम्।
वन्दे हृत्-कमले सदा रवि-दले बालेन्द्र-विद्यां सतीं, साक्षात् सिद्धि-करीं कुमारि विमले! त्वामाद्य-रूपेश्वरीं ॥६

नित्यं श्री-कुल-कामिनीं कुल-वतीं कौलामुमाम्बिकां, नाना-योग-विलासिनीं सु-रमणीं नित्यं तपस्यान्वितां ।
वेदान्तार्थ-विशेष-देश-वसना-भाषा-विशेष-स्थिताम्, वन्दे पर्वत-राज-राज-तनयां काल-प्रिये ! त्वामहम् ।।७
कौमारीं कुल-मालिनीं रिपु-गण-क्षोभाग्नि-सन्दायिनीम्, रक्ताभा-नयनां शुभां परम-मार्गान्मुक्ति-संज्ञा-प्रदां ।
मायां भोग-वतीं पतिं त्रिभुवनेष्वामोद-पञ्चाननाम्, पञ्चास्य-प्रिय-कामिनीं भय-हरां सर्पादि-हारां भजे ।।८
चन्द्रास्यां चरण-द्वयाम्बुज-महा-शोभा-विनोदीं नदीं, मोहादि-क्षय-कारिणीं वर-करां श्री-कुब्जिकां सुन्दरीं ।
ये नित्यं परि-पूजयन्ति सहसा राजेन्द्र-चूडामणिम्, तेषां हि धनमायुषं त्रि- जगतां व्याप्येश्वरत्वं जगुः ।।९
योगीशं भुवनेश्वरं प्रिय-करं श्री - काल-सन्दर्भदम, शोभा-सागर-गामिनं सुर-तरोर्वाञ्छा - फलोद्दीपनम् ।
लोकानामघ-नाशनाय शिवया श्री-संज्ञया विद्यया, धर्म-प्राण - स - दैवतं प्रणमतां कल्प-द्रुमं भावये ।।१०
विद्यां तामपराजितां मदन-मोद-मत्ताननां शुभाम्, हृत्-पद्म-स्थित-पादुकां कुल-कलां कात्यायनीं भैरवीम् ।
ये ये पुण्य-धियो भजन्ति परमानन्दाब्धि-मध्ये मुदा, सर्वाच्छादित-तेजसा भय-करीं मोक्षाय सत्कीर्त्तये ।।११
रुद्राणीं प्रणमामि पद्म-वदनां कोट्यर्क-तेजो-मयीम्, नानालंकृत - भूषणां कुल-भुजामानन्द - सन्दायिनीम् ।
श्री-मायां कमलान्वितां हृदि गतां सन्तान-वीज-क्रियां,वन्दे वाग्भव-रूपिणीं कुल-वधूं हुङ्कार-वीजोद्भवां।।१२
नमामि वर - भैरवीं क्षिति - तलाघ - कालानलाम्, मृणाल - कुसुमारुणां भुवन - दोष - संशोधिनीम् ।
जगद्-भय - हरां परां तरति या च योगेश्वरी, ममापद - सहस्रकं सकल - भोगदां तामहम् ।।१३
साम्राज्यं प्रददाति या भगवती विद्या महा - लक्षणा, साक्षादष्ट-समृद्धिदा भुवि महा-लक्ष्मीः कुल-क्षोमहा ।
स्वाधिष्ठान-सु-पङ्कजे विकसिता विष्णोरनन्त-श्रिये, वन्दे राज-पद-प्रदां शुभ-करीं कौलेश्वरीं सर्वदा ।।१४
पीठानामधिपाधिपामसुरहां विद्यां शुभां नायिकां, सर्वालङ्करणान्वितां त्रि-जगतां क्षोभापहां वारुणीम् ।
वन्दे पीठग-नायिकां त्रि-भुवनच्छायामिराच्छादितां, सर्वेषां हित-कारिणीं जय-वतामानन्द-रूपेश्वरीं ।।१५
क्षेत्रज्ञां मद-विह्वलां कुल-वतीं सिद्धि-प्रियां प्रेयसीम्, शम्भोः श्रीवटुकेश्वरस्य महतामानन्द-सञ्चारिणीम् ।
साक्षादात्म-परोदगमां निज-मनः-क्षोभापहां शाकिनीं, वाक्यार्थ-प्रकटामहः रजतभां वन्दे महा-भैरवीं ।।१६
सम्पूर्ण-विधु - वन्मुखीं कमल - मध्य-सम्भाविनीम्, शिरो-दश - शते दलेऽमृत - महाब्धि-धारा - धराम् ।
प्रणाम-फल-दायिनीं सकल - राज्य-वश्यां गुणाम्, नमामि परमाम्बिकां विषय - पाश - संहारिणीम् ।।१७
साक्षादहं त्रिभुवनेऽमृत - पूर्ण - देहाम्, सन्ध्यादि - देवि ! कमलां कुल - पण्डितेन्द्राम् ।
तन्नो भजे दश - शते दल - मध्य - मध्ये, कौलेश्वरीं सकल - दिव्य - जनाश्रयां त्वाम् ।।१८
विश्वेश्वरीं सुर - कुले वर - कालिके ! त्वां, सिद्धानले ! प्रति - दिनं प्रणमामि भक्त्या ।
भक्तिं धनं जय - पदं यदि देहि दास्यम्, तस्मिन् महा - मधु - मती लघु-गेह - भार्याम् ।।१९
एतत् स्तोत्र - प्रसादेन कविता - वाक् - पतिर्भवेत्, महा - सिद्धीश्वरो दिव्यो वीर - भाव - परायणः ।
सर्वत्र जयमाप्नोति स हि स्याद् हर - वल्लभः, वाचामीशो भवेत् क्षिप्रं काम - रूपी भवेन्नरः ।।२०
पशुरेव महा - वीरो दिव्यो भवति निश्चितम्, क्रमशो हृयष्ट-सिद्धिः स्याद् वाग्मी भवति निश्चितम् ।
सर्वा विद्याः प्रसीदन्ति तुष्टाः सर्व - दिगीश्वराः, वह्निः शीतलतां याति जल-स्तम्भं स कारयेत् ।। २१
धन-वान् पुत्र-वान् राजा इह - लोके भवेन्नरः, स गच्छति च वैकुण्ठे कैलासे शिव - सन्निधौ ।
मुक्तिरेव महा - देव ! यो नित्यं सर्वदा पठेत्, महा-विद्या - पदाम्भोजं स हि पश्यति निश्चितम् ।।२२

निम्न मन्त्र से कुमारियों को अष्टाङ्ग-प्रणाम करे—

'नमामि कुल-कामिनीं परम-भाग्य-सन्दायिनीं । कुमार-रति-चातुरीं सकल-सिद्धिमानन्दिनीं ।'
प्रवाल-गुटिका-स्रजं रजत-राग-वस्त्रान्वितां । हिरण्य-तुल-भूषणां भुवन-वाक् कुमारीं भजे ।'

प्रणाम करने के बाद तारिणी, शिव और गणेश की पूजा कर पुनः प्रणाम कर विधिवत् क्रमशः कुमारियों को दक्षिणा प्रदान करे।

स्वयं ही यदि कन्या का विवाह करे तो ब्रह्म-हत्या जैसा घोर पाप भी नष्ट हो जाता है। साथ ही उसे भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। कन्या-दान का बहुत बड़ा पुण्य कहा गया है। कन्या को देवी-रूप और वर को शिव-रूप मानकर कन्या-दान करना चाहिए।

कुमारी-मन्त्र का पुरश्चरण—आठवें पटल में बताया है कि माया (ह्रीं) या वाग्भव (ऐं) या काली-बीज (क्रीं) या काम-बीज (क्लीं) को सदाशिव (हौं) या प्रणव (ॐ) से पुटित कर उसका एक लाख जप करे। इसके दशांश घृताक्त बिल्व-पत्रों या श्वेत कुन्द पुष्पों या केवल चन्दनागरु-मिश्रित घृत से हवन करे। दिन में हविष्य खाकर रहे और रात्रि में कुल द्रव्यों से पूजा करे। परमानन्द-मय होकर उस समय १२ सहस्र जप करे। जप के बाद उक्त द्रव्यों से हवन करे। तब प्राणायाम कर प्रसन्न मन से साष्टाङ्ग प्रणाम करे। प्रणाम करते समय स्तोत्र का पाठ करे। इस समय कुमारी-कवच, इष्ट-देवो का स्तोत्र, पीठ-कवच, सहस्र-नाम आदि का पाठ करने से निश्चित रूप से सिद्धि मिलती है। इस सबका पाठ करने में असमर्थ हो, तो अपने इष्ट-देवता के सहस्रनाम का पाठ करे।

कुमारी-पूजा-का प्रयोग —एक वर्ष से लेकर सोलह वर्ष तक की अजात-पुष्पा (जो रजस्वला न हो) कन्या को 'कुमारी' कहते हैं। आयु के अनुसार उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

१ सन्ध्या, २ सरस्वती, ३ त्रिधा मूर्तिः, ४ कालिका, ५ सुभगा, ६ उमा, ७ मालिनी, ८ कुब्जिका, ९ काल-सन्दर्भा, १० अपराजिता, ११ रुद्राणी, १२ भैरवी, १३ महा-लक्ष्मीः, १४ पीठ-नायिका, १५ क्षेत्रज्ञा, १६ अम्बिका।

प्रतिपदा से लेकर पञ्चदशी तक क्रमशः इनका पूजन वृद्धि-क्रम से करना चाहिये। कुमारी सभी जातियों की प्रशस्त हैं। यथा—

नटी-कन्या, कापालिक-कन्या, रजक-कन्या, नापित-कन्या, गोपाल-कन्या, ब्राह्मण-कन्या, शूद्र-कन्या, वैद्य-कन्या, वणिक्-कन्या, चाण्डाल-कन्या, सुहृद्-वर्ग-कन्या।

कुमारी को आसन पर बिठाकर निम्न प्रकार ध्यान करे—

बाल-रूपां च त्रैलोक्य-सुन्दरीं वर-वर्णिनीम्, नानालङ्कार-सम्राजीं भद्र-विद्या-प्रकाशिनीम्।
चारु-हास्यां महाऽऽनन्द-हृदयां शुभदां शुभाम्॥

इस प्रकार ध्यान कर अपने शिर पर पुष्प रख मानसोपचारों से पूजा कर पुनः ध्यान कर कुमारी के प्रति निम्न प्रकार क्रमशः पूजोपचार अर्पित करे—

'इदमासनं ऐं ह्रीं श्रीं हुं ह्सौः सन्ध्यायै कुमार्यै नमः।'

इस प्रकार पूर्व-बीजों का उच्चारण कर 'सरस्वत्यै कुमार्यै नमः' इत्यादि आयु के अनुसार क्रमशः चतुर्थ्यन्त से नाम आसनादि षोडश उपचारों द्वारा पूजन करे। यथा—

१—एतज्जलं ऐं सन्ध्यायै नमः। २—एतत् पाद्यं ह्रीं सन्ध्यायै नमः। ३—एवमाभरणम्। ४—एष गन्धः हुं सन्ध्यायै नमः। ५—एतानि पुष्पाणि ह्रीं सन्ध्यायै वौषट्। ७—एष धूपः ह्सौः सन्ध्यायै नमः। ७—एवं दीपः। ८—एतन्नैवेद्यं ऐं ह्रीं श्रीं हुं ह्सौं सन्ध्यायै निवेदयामि।

कुमारी-तर्पण—कुमारी-तर्पण के लिए निम्न स्तोत्र का पाठ भक्ति-भावना-पूर्वक करना चाहिए। इससे तर्पण का अभीष्ट फल मिल जाता है—

कुल-वाहां मूल-पद्म-स्थितां काम-विहारिणीं। शतधा मूल-मन्त्रेण तर्पयामि तव प्रिये ॥१॥ मूलाधार-महा-तेजश्छटा-मण्डल-मण्डितां। सन्ध्या-देवीं तर्पयामि काम-बीजेन मे शुभे ॥२॥ मूल-पङ्कज-योगाङ्गीं कुमारीं श्रीसरस्वतीं। तर्पयामि कुल-द्रव्यैस्तव सन्तोष-हेतुना ॥३॥ चारु-मूलाधार-पद्मे त्रि-मूर्ति बाल-नायिकां। सर्व-कल्याणदां देवीं तर्पयामि परामृतैः ॥४॥ स्वाधिष्ठान-महा-पद्म-षड्-दलान्तः-प्रकाशिनीं। श्री-बीजेन तर्पयामि भोग-मोक्षाय केवलं ॥५॥

स्वाधिष्ठान-कुलोल्लास-विष्णु-सङ्केत-गामिनीं। कालिकां निज-बीजेन तर्पयामि कुलामृतैः ॥६॥ स्वाधिष्ठानाख्य-पद्मस्थां महा-तेजो-मयीं शिवां। सूर्याणां शीर्ष-मधुना तर्पयामि कुलेश्वरीं ॥७॥ मणि-पुराब्ज-मध्येषु मनोहर-कलेवरां। उमा-देवीं तर्पयामि माया-बीजेन पार्वतीं ॥८॥ मणिपूराम्भोज-मध्ये त्रैलोक्य-परि-पूजितां। मालिनीं मल-चित्तस्य सद्-बुद्धेस्तर्पयाम्यहं ॥९॥ मणिपुर-स्थितां रौद्रीं परमानन्द-वर्द्धिनीं। आकाश-गामिनीं देवीं कुब्जिकां तर्पयाम्यहं ॥१०॥

तर्पयामि महा-देवीं मन्त्र-साधन-तत्परां। योगिनीं काल-सन्दर्भां तर्पयामि कुलाननां ॥११॥ शक्ति-मन्त्र-प्रदां रौद्रीं लोल-जिह्वा-समाकुलां। अपराजितां महा-देवीं तर्पयामि कुलेश्वरीं ॥१२॥ महा-कौल-प्रियां सिद्धां रुद्र-लोक-सुख-प्रदां। रुद्राणीं रुद्र-किरणां तर्पयामि मधु-प्रियां ॥१३॥ षोडश-स्वरसंसिद्धिं महा-रौरव-नाशिनीं। महा-मद्य-पान-चित्तां भैरवीं तर्पयाम्यहं ॥१४॥ त्रैलोक्य-वरदां देवीं श्री-बीज-मालयावृतां। महा-लक्ष्मीं भवैश्वर्यां तर्पयाम्यहमम्बिके ॥१५॥

लोकानां हित-कर्त्रीं च हिताहित-जन-प्रियां-तर्पयामि रमा-बीजं-पीठाद्यां पीठ-नायिकां ॥१६॥ जयन्तीं वेद-वेदाङ्ग-मातरं सूर्य - मातरं। तर्पयामि सुधाभिश्च क्षेत्रज्ञां मायया वृतां ॥१७॥ तर्पयामि कुलानन्द - पारगां परमाननां। तर्पयाम्यम्बिकां देवीं महा-लक्ष्मीं हृदि स्थितां ॥१८॥ सर्वेषां चरण-द्वयाम्बुज-तलं चैतन्य-विद्या-वतां। सौख्यार्थं शुभ-षोडश-स्वर-युतं श्री-षोडशी-मङ्गलं। आनन्दार्णव-पद्म-राग-खचिते सिंहासने शोभिते। त्वां नित्यं परि-तर्पयामि सकल-श्वेताब्ज-मध्यासने ॥१९॥

ये नित्यं सु-प्रतिष्ठित-चारु-सकल-स्तोत्राङ्ग-सन्तर्पणं। विद्या-दान-निदान-मोक्ष-परमं माया-मयं यान्ति वै। नो सन्ति क्षिति-मण्डलेश्वरि-गणाः सर्वे विपत्-कारकाः। राजानं वशयन्ति योग-सकलैर्नित्या भवन्ति क्षणात् ॥२०॥

तर्पणात्मक-मोक्षाख्यं पठन्ति यदि मानुषाः। अष्टैश्वर्य-युतो भूत्वा वत्सरात् च प्र-पश्यति ॥२१॥ महा-योगी भवेन्नाथ ! मासादभ्यासतः प्रभो ! त्रैलोक्यं क्षोभयेत् क्षिप्रं वाञ्छा-फलमाप्नुयात् ॥२२॥ यः पठेदेक - भावेन स तर्पण-फलं लभेत्। पूजा-फलमवाप्नोति कुमारी - स्तोत्र-पाठतः ॥२३॥ यो न कुर्यात् कुमार्यर्चां स्तोत्रं च नित्य-मङ्गलं। स भवेत् पशु-कल्पो हि मृत्युस्तस्य पदे पदे ॥२४॥

॥ इति रुद्र-यामले उत्तर-खण्डे महा-कुलोद्दीपने कुमार्युपचर्या-विन्यासे सिद्ध-मन्त्र-प्रकरणे दिव्य-भाव-निर्णये भैरव-भैरवी-सम्वादे कुमारी-स्तोत्रं ॥

'कुमारी-कवच'—'त्रैलोक्य-मङ्गल' नामक कुमारी-कवच-स्तोत्र निम्न प्रकार है—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कुमारी-कवचं शुभं । त्रैलोक्य-मङ्गलं नाम महा-पातक - नाशनं ।। पठनाद् धारणाल्लोका महा-सिद्धाः प्रभा-कराः । शक्रो देवाधिपः श्रीमान् देव-गुरुर्बृहस्पतिः ।। सम्यक् तेजो-मयो वह्निर्धर्म-राजो भयानकः । वरुणो देव-पूज्यो हि जलानामधिपः स्मृतं ।। सर्व-हर्त्ता महा-वायुः कुमारः कुञ्जरेश्वरः । धनाधिपः प्रियः शम्भोः स देवा दिगीश्वराः ।। त्वमेकः प्रभुरेकात्मा सर्वेशो निर्मलोदयः । एतत् कवच-पाठेन सर्वे भूपा धनाधिपाः ।।

प्रणवो मे शिरः पातु माया सन्ध्यात्मिका सती । ललाटोर्ध्वे महा-माया पातु मे श्रीसरस्वती ।।१
कामाख्या वटुकेशानी त्रिमूर्तिर्भालमेव तु । चामुण्डा-बीज - रूपा च वदनं कालिका मम ।।२
पातु मां सूर्यगा नित्यं तथा नेत्र-द्वयं मम । कर्ण-युग्मं काम-बीज - स्वरूपा मां तपस्विनी ।।३
रसनाग्रं तथा पातु वाग्-देवी मालिनी मम । तालव्यग्रं काम-रूपा च दन्ताग्रं कुब्जिकाऽवतु ।।४
देवी प्रणव-रूपा सा पातु नित्यं शिरो मम । ओष्ठाधरं शक्ति-बीजात्मिका स्वाहा-स्वरूपिणी ।।५
गल-देशं महा-रौद्री पातु मे चापराजिता । क्ष्रौं-बीजं मे सदा कण्ठं रुद्राणी स्वाहयाऽन्विता ।।६
हृदयं षोडशी विद्या पातु षोडश - सु-स्वरा । द्वौ बाहू पातु सर्वत्र महा-लक्ष्मीः प्रधानिका ।।७
सर्व-मन्त्र-स्वरूपा मे चोदरं पीठ - नायिका । पार्श्व-युग्मं तथा पातु हृद्-देवी वाग्भवात्मिका ।।८
कैशोरी कोटि-देशं मे माया-बीज-स्वरूपिणी । जङ्घा-युग्मं जयन्ती मे योगिनी कुल्लुकावृता ।।९
सर्वाङ्गमम्बिका देवी पातु मन्त्रार्थ-गामिनी । केशाग्रं कमला देवी नासाग्रं नर-मोहिनी ।।१०
चिबुकं चण्डिका देवी कुमारी पातु मे सदा । हृदयं ललिता देवी पृष्ठं पर्वत - वासिनी ।।११
त्रि-शक्तिः षोडशी देवी लिङ्गं गुह्यं सदाऽवतु । श्मशाने चाम्बिका देवी गङ्गा-गर्भे च भैरवी । १२
शून्यागारे पञ्च-मुद्रा मन्त्र-यन्त्र-प्रकाशिनी । चतुष्पथे सदा पातु मामेव वज्र - धारिणी ।।१३
शवासन-गता चण्डा मुण्ड-माला-विभूषिता । पातु मामेव लिङ्गे च ईश्वरी शक्ति-रूपिणी ।।१४
वने पातु महा-बाला महाऽरण्ये रण - प्रिया । महा-जले तड़ागे च शत्रु - मध्ये सरस्वती ।।१५
महाऽऽकाश-पथे पृथ्वी पातु मां शीतलासदा । रण-मध्ये राज-लक्ष्मीः कुमारी कुल-कामिनी ।।१६
अर्द्ध-नारीश्वरा पातु मम पाद-तलं मही । नव-लक्ष-महा - विद्या कुमारी-रूप-धारिणी ।।१७
कोटि-सूर्य-प्रतीकाशा चन्द्र-कोटि-सुशीतला । पातु मां वरदा वाणी वटुकेश्वर - कामिनी ।।१८

इति ते कथितं नाथ ! कवचं परमाद्भुतं । कुमार्य्याः कुल-दायिन्याः पञ्च-तत्वार्थ-पारगं ।।१।। यजेत् पञ्च-तत्वेन स्तोत्रेण कवचेन च । आकाश-गामिनी सिद्धिर्भवेत् तस्य न संशयः ।।२।। वज्र-देही भवेत् क्षिप्रं कवचस्य प्रसादतः । सर्व-सिद्धीश्वरोयोगो ज्ञानी भवति यः पठेत् ।।३।। विवादे व्यव-हारे च संग्रामे कुल-मण्डले ! महा-पथे श्मशाने च योग-सिद्धयुद्धवेषु च ।।४।। पठित्वा फलमाप्नोति सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! वशीकरण-कवचं सर्वत्र जयदं शुभम् ।।५।।

पुण्य-व्रती पठेन्नित्यं यतिः श्रीमान् भवेद् ध्रुवं । सिद्ध-विद्या कुमारी च ददाति सिद्धिमुत्तमां ।।६।। पठेद् यः शृणुयाद् वापि स भवेत् कल्प - पादपः । भुक्ति-मुक्ति-तुष्टि-पुष्टिं राज-लक्ष्मीं सु-सम्पदं ।।७।। प्राप्नोति साधक-श्रेष्ठो धारयित्वा भवेज्जयी । असाध्यं साधयेद् विद्वान् पठित्वा कवचं शुभं ।।८।। कुलीनानां महा-सौख्यं धर्मार्थ-काम-मोक्षदं । यागिनीं दिवसे नित्यं कुमारीं पूजयेन्निशि ।।९।। उपचार-विशेषेण त्रैलोक्यं वशमानयेत् । पललस्याशनेनापि मस्त्येन मुद्रया सह ।। १० ।।

नाना-भक्ष्येण भोज्येन गन्ध-द्रव्येण साधकः । माल्येन स्वर्ण-रजतालङ्कारेण सु-चैलकैः ॥११॥ पूजयित्वा जपित्वा च तर्पयित्वा वरानना । यज्ञ-दान-तपस्याभिः प्रयोगेन महेश्वरि ॥१२॥ स्तुत्वा कुमारी-कवचं यः पठेदेक-भावतः । तस्य सिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं राज-राजेश्वरो भवेत् ॥१३॥ वाञ्छा-फलमाप्नोति यद् यन्मनसि वर्तते । भूर्ज-पत्रे लिखित्वा च कवचं धारयेद् यदि ॥१४॥ शनि--मङ्गल-वारे च नवम्यामष्टमी-दिने । चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां कृष्ण-पक्षे विशेषतः ॥१५॥

लिखित्वा धारयेद् विद्वान् उत्तराभिमुखो भवन् । महा-पातक-युक्तोऽपि मुक्तः स्यात् सर्व-पातकैः ॥१६॥ योषिद्-वाम-भुजे धृत्वा सर्वं कल्याणमालभेत् । बहु-पुत्रान्विता कान्ता सर्व-सम्पत्ति-संयुता ॥१७॥ तथा श्रीपुरुष-श्रेष्ठो दक्षिणे धारयेद् भुजे । ऐहिके दिव्य-देहः स्यात् पञ्चानन-सम-प्रभः ॥१८॥ शिव-लोके परे याति वायु-वेगी निरामयः । सूर्य-मण्डलमाभिद्य परं मोक्षमवाप्नुयात् ॥१९॥ लोकानामति-सौख्यदं भय-हरं श्रीपाद-भक्ति-प्रदं । मोक्षार्थं कवचं शुभं प्रपठतामानन्द - सिन्धूद्भवं । लोकानां कलि-काल-घोर-कलुष-ध्वंसैक-हेतुं जयं ! ये लोकाः प्रपठन्ति धर्ममतुलं मोक्षं व्रजन्ति क्षणात् ॥२०॥

॥ इति रुद्र-यामले उत्तर-तन्त्रे महा-तन्त्रोद्दीपने कुमार्युपचर्या-न्यासे कुमारी-कवचोल्लासे सिद्ध-मन्त्र-प्रकरणे भाव-निर्णय-कुमारी-कवचं समाप्तम् ॥

समर्थ हो, तो कुमारी-सहस्रनाम का भी पाठ करे, जो रुद्रयामल, उत्तर खण्ड के दशम पटल में दिया है । स्थानाभाव से यहाँ उसे उद्धृत नहीं किया है ।

'ब्राह्मण-प्रशंसा--मत्स्य-सूक्त, तृतीय चरण, प्रथम पटल के अनुसार ब्राह्मण जङ्गम अर्थात् चलते-फिरते जल-हीन किन्तु सर्व-काल-व्यापी तीर्थ के समान हैं क्योंकि उनके वचन-रूप जल से मलिन मन-वाले लोगों के दोष दूर होकर वे शुद्ध हो जाते हैं ।

योगिनी तन्त्र, पूर्व-खण्ड, १३वें पटल के अनुसार विप्र सर्व-देव-मय हैं, ब्रह्मा - विष्णु - शिव के साक्षात् स्वरूप हैं । द्विज ब्रह्म-तेज से उत्पन्न होकर सदा प्रकृति-रूप में रहते हैं । जहाँ ब्राह्मण भोजन करते हैं, वहाँ स्वयं भगवान् ही भोजन करते हैं; वहीं ब्रह्मा, रुद्र, ऋषि, मुनि, पितर और सारे देवता भी भोजन करते हैं, इसमें सन्देह नहीं । सर्व-देव-मय होने से विप्रों को कभी उपेक्षा नहीं करना चाहिए ।

सातवें पटल में कहा है कि विद्वान् हो या विद्या-हीन हो, ब्राह्मण का सदा आदर करना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने से देवता सदा प्रसन्न होते हैं । ब्राह्मण के असन्तुष्ट होने पर देवता भी अप्रसन्न हो जाते हैं । अतः ब्राह्मण का कभी अपमान न करे ।

१३वें पटल के अनुसार कर्म-भूमि में पूजा करने के लिये देव-गण ब्राह्मण, कुमारी, शक्ति, अग्नि, श्रुति और गाय की सदा इच्छा करते हैं ।

बृहन्नील तन्त्र, सातवें पटल में कहा है कि जो अध्यापक को धन देकर द्विजों को पढ़वाता है, उसे असीम पुण्य प्राप्त होता है ।

योगिनी-तन्त्र के अनुसार ब्रह्म-शाप अत्यन्त कठिन होता है । अतः किसी को कभी ब्राह्मण को कुपित नहीं करना चाहिये । ब्राह्मणों के वचन को सदा वज्र के समान प्रभावी समझना चाहिए ।

१३वें पटल में बताया है कि तक्षक नाग के विष की तुरन्त दवा हो सकती है किन्तु ब्रह्म-शाप का प्रभाव कल्पान्त तक बना रहता है । वहीं उल्लेख है कि कलियुग में 'कल्प' का परिमाण तीन सौ वर्ष है । अतः ब्रह्म-शाप से पीड़ित व्यक्ति का नरक से उद्धार नहीं होता । ऐसी दशा में ब्राह्मण का कभी कहीं अपमान न करना चाहिये ।

हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९६ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

'शक्ति-पीठ' काशी

'काली-मठ' में
सिंह पर आसीन भ० काली

'काली-मठ' का
बलि-कुण्ड

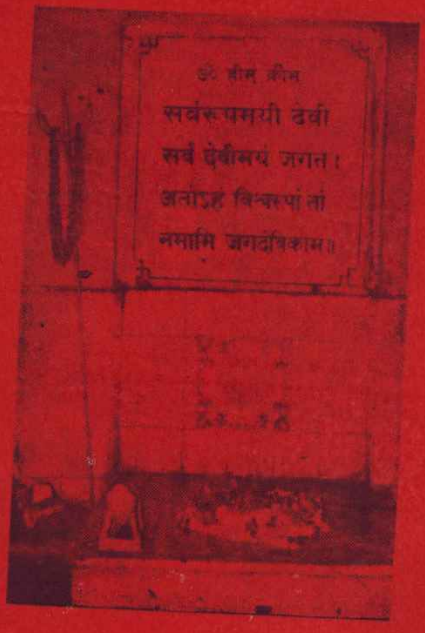

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ४८] मार्गशीर्ष-पौष २०४६ वि०—दिसम्बर, ८९-जनवरी, १९९० [संख्या ९-१०

१ शक्ति-पीठ काशी (तन्त्र-शास्त्र, पीठ-निर्णय और पुराणादि के उल्लेख) १
२ काशी का 'काली-मठ' : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ३
३ काली-मठ के सिद्ध महा-पुरुष : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल ५
४ काली-मठ की गौरव-मयी परम्परा : श्री अशोककुमार श्रीवास्तव ९
५ अति विस्तृत शाक्त-सम्प्रदाय : स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १०
६ महान् साधक श्रीनारायण दीक्षित : पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ११
७ सर्व-जीव-हितकारी, महान् शाक्त-सम्प्रदाय : स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १३
८ स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल १४
९ शक्ति-उपासना : स्वामी ज्ञानानन्द जी १५
१० 'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित : श्री रामरख सहगल १६
११ पं० कन्हैयालाल दीक्षित के उद्बोधक निबन्ध २२-४०

१ शक्ति की उपासना ···२२
२ शक्ति-साधना —एक सिद्ध प्रयोग ···२३
३ शाक्तों का प्रधान धन ···२७
४ निस्तार का मार्ग ···३०
५ कौल की सरल साधना ···३२
६ कौल का विराट् स्वरूप ···३६
७ साधना-रहस्य ···३८
८ सन्ध्या-कर्म का रहस्य ···३९
९ दीक्षा-रहस्य ···४०

१२ काशी के छः तान्त्रिक आचार्य : म० म० श्री गोपीनाथ कविराज ४१
१३ काशी के कतिपय सिद्ध सन्त : पं० जगन्नारायण देव शर्मा 'कवि-पुष्कर' शास्त्री ४३
१४ मां अन्नपूर्णा का काशी आगमन ७२
१५ 'शक्ति-पीठ' काशी के यात्रा-क्रम : श्री पं० कुबेरनाथ सुकुल ७४
१ जल-तीर्थों की यात्रा ··७४, २ देवी-पीठों की यात्रा···७६, ३ भैरव-यात्रा ·· ७६
१६ पञ्च-कोशी यात्रा : श्री पं० कुबेरनाथ सुकुल ७७
१७ पञ्च-कोशी यात्रा का रहस्य : गुप्तावतार बाबाश्री ८०
१८ 'शक्ति-पीठ' काशी के देवी-स्थान : पं० कालीप्रसाद मिश्र के सौजन्य से ८१
१९ 'रुद्र-यामल तन्त्र' में 'शक्ति-पीठ' काशी : श्री ऋतशील शर्मा ८४
२० सम्पादकीय ८६

साधनोपयोगी श्रेष्ठ पुस्तकें

पूजा-रहस्य

हिन्दुओं की पूजा का व्याख्यात्मक अनूठा विवरण

मूल्य १५-०० रु०

सचित्र मुद्राएँ एवम् उपचार

हिन्दुओं की पूजा में प्रयुक्त होनेवाली मुद्राओं एवं पूजोपचारों (आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा आदि) का प्रामाणिक वर्णन ।

मूल्य १०-०० रु०

सविधि श्री कुण्डलिनी साधना

षट्-चक्रों एव कुण्डलिनी-योग का सचित्र विवेचन

मूल्य १५-०० रु०

मन्त्र-कोष

पञ्च-देव (गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, भगवती दुर्गा), दश-महा-विद्या (काली, तारा, श्रीविद्या आदि) तथा विविध देवताओं के मन्त्रों का अनुपम कोष, बीज-कोषादि

मूल्य ५५-०० रु०/सजिल्द मूल्य ६५-०० रु०

शक्ति-तत्त्व

शाक्त-सम्प्रदाय की उपास्य देवता 'शक्ति'

के

तात्त्विक रहस्य को स्पष्ट करनेवाला

निबन्धसंग्रह

मूल्य १५-०० रु०

भगवती दुर्गा के सहस्रनाम

(शिव-तोषिणी टीकासहित)

मूल्य १०-०० रु०